* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये
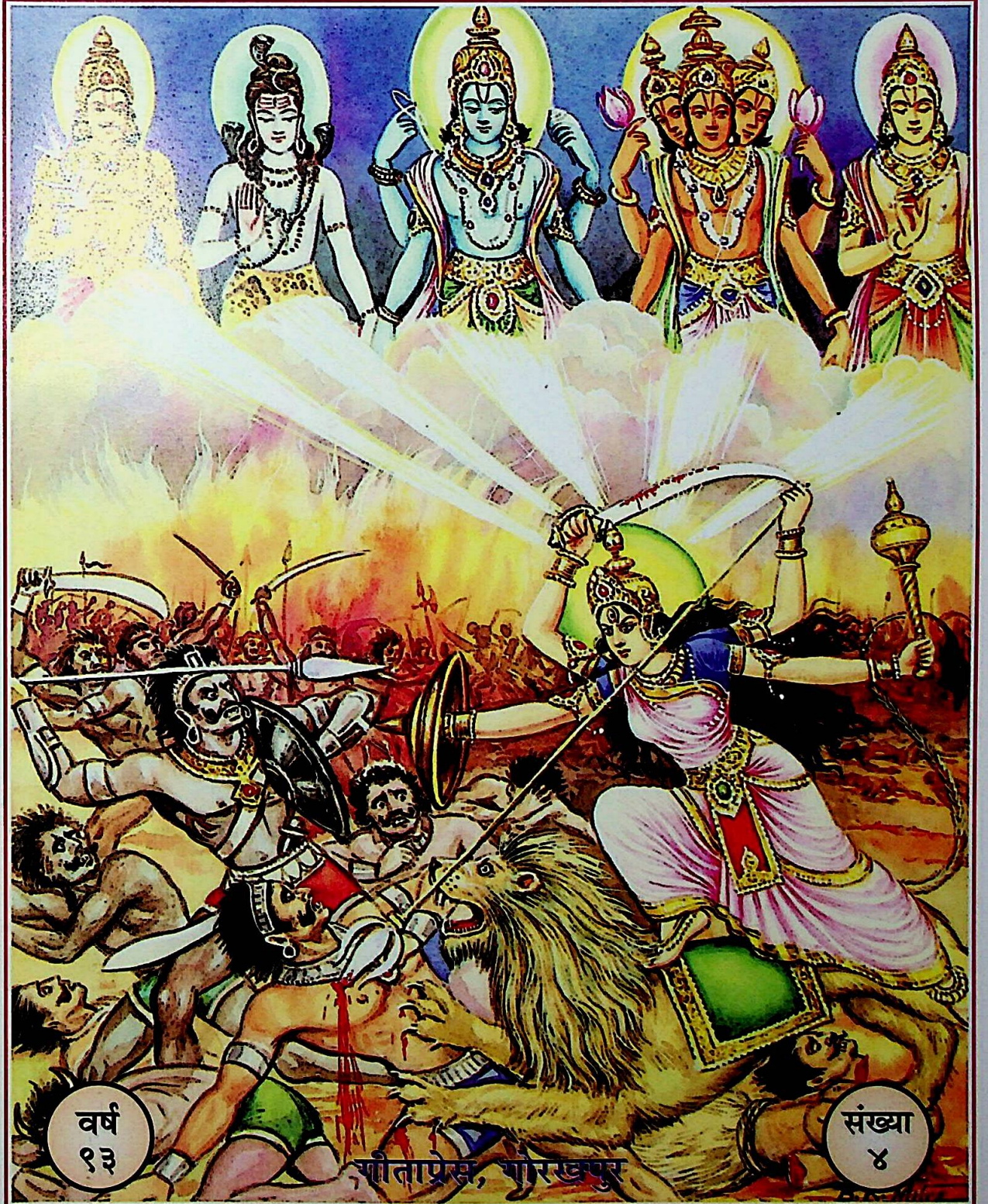
भगवती महिषासुरमर्दिनी
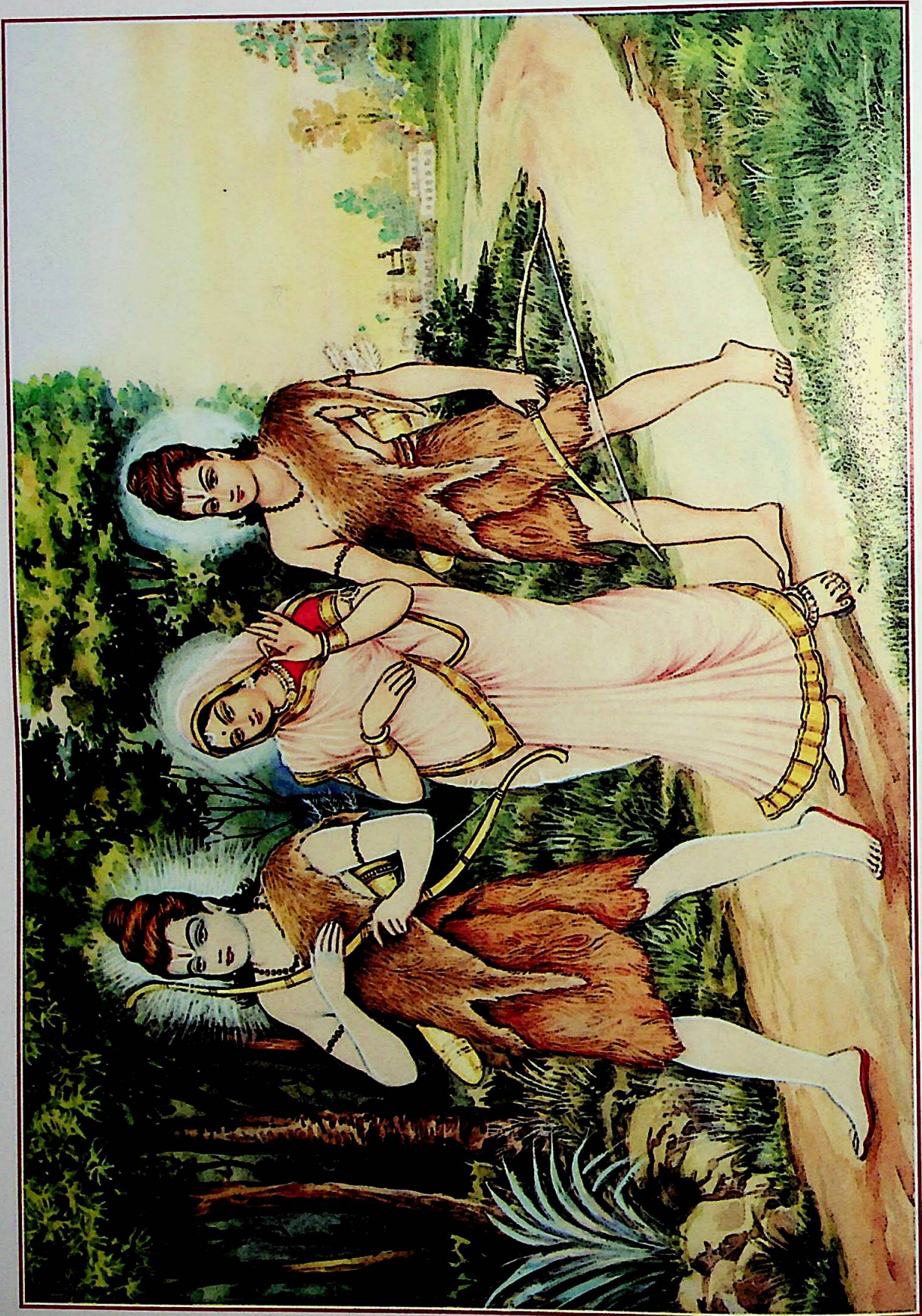
वन-पथपर राम-सीता और लक्ष्मण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अप्रैल २०१९ ई०

पूर्ण संख्या ११०९

वनपथपर राम, सीता और लक्ष्मण

मधुर मृदु सुंदर राजकुमार॥
स्यामल-गौर किसोर बंधु दोउ सुचि सुषमा-आगार।
कटि तूनीर, तीर-धनु कर महँ धीर बीर सुकुमार॥
जटा-जूट-मंडित, मुनि पट, उर-बाहु बिसाल उदार।
चले जात पथ, पग बिनु पनही रूप-सील-भंडार॥
उभय मध्य राजति श्रीजानकि सोभामई अपार।
अति निर्मल देखत मन उमगत श्रद्धा-सरिता-धार॥
बूझति पिय सौं चकित, कथा बन की करि, हृदय बिचार।
हेरि-हेरि सिय-तनु समुझावत प्रिया, भरे हिय प्यार॥
लखन सकुचि सोचत सिय-हिय की बात, न पावत पार।
धन्य ते, जिन निरखे इनहीं, भरि नैन सकल सुख-सार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अप्रैल २०१९ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराद् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹२५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—सांसारिक सुख तुम्हारी उन्नतिका प्रतिबन्धक है, तुम्हारे विकासका वैरी है, तुम्हारे विवेकका नाशक है और तुम्हारे नये पापों और बन्धनोंका कारण है।

याद रखो—सांसारिक सुख तुम्हें सम्पत्तिपर गर्व करना सिखाता है, तुम्हारी प्रवृत्तियोंको बहिर्मुखी करता है, तुम्हारी यथार्थ दृष्टिपर अज्ञानका पर्दा डाल देता है और तुम्हारे सहज जीवन-प्रवाहका अवरोध करता है।

याद रखो—सांसारिक सुख तुम्हें ऐश्वर्यका गुलाम बनाता है, भविष्यकी सुखकल्पनाके भ्रमजालमें फँसाता है, तुम्हारे हृदयको कलुषित करता है और तुम्हें पतनकी ओर ले जाता है।

याद रखो—सांसारिक सुख विषयोंमें आसक्ति और कामनाको बढ़ाता है, बुद्धिको भ्रष्ट करता है, दीन और दुखियोंके प्रति उपेक्षाके भाव जाग्रत् करता है और अधिकारकी प्रबल लालसा उत्पन्न करता है।

याद रखो—सांसारिक सुख दूसरोंकी उन्नतिमें ईर्ष्या उत्पन्न करता है, मोहमुग्ध कर देता है, दूसरोंको मूर्ख और अपनेको बुद्धिमान् माननेके लिये आग्रह करता है और सहज ही श्रेष्ठ पुरुषोंका भी अपमान करवा देता है।

याद रखो—सांसारिक सुख मनुष्यकी दृष्टिको परम साध्यसे हटा देता है, विलास-विभ्रममें जोड़ देता है, आत्मशक्तिको छिपा देता है और मानव-जीवनको विफल कर देता है।

याद रखो—सांसारिक सुख तुम्हें धर्मसे हटाता है, ईश्वरसे विमुख करता है, आत्माको अधोगतिमें ले जाता है और नरकोंकी यन्त्रणा भोगनेको बाध्य करता है।

याद रखो—इसके विपरीत, सांसारिक दुःख उन्नतिमें सहायक है, विकासकी ओर ले जाता है, विवेकको जाग्रत् करता है और पापोंका प्रायश्चित्त कराकर बन्धनोंको काटता है।

याद रखो—सांसारिक दुःख तुम्हें सुकृतियोंपर गर्व करना सिखाता है, तुम्हारी प्रवृत्तियोंको अन्तर्मुखी करता है, यथार्थ दृष्टिको खोलता है और जीवनप्रवाहको सीधा चलने देता है।

याद रखो—सांसारिक दुःख तुम्हें मनका स्वामी बनाता है, भविष्यमें सच्चे सुखके साधन बतलाता है, हृदयको पवित्र और उदार बनाता है और उत्कर्षकी ओर ले जाता है।

याद रखो—सांसारिक दुःख वैराग्य और उपरतिको उत्पन्न करता है, बुद्धिको शुद्ध करता है, दीन-दुखियोंके प्रति सहानुभूतिके भाव जाग्रत् करता है और अधिकारके केन्द्रसे हटाकर कर्तव्यपरायण बनाता है।

याद रखो—सांसारिक दुःख विनयी और नम्र बनाता है, मोह-निद्रासे जगाता है, दूसरोंके प्रति सद्भाव पैदा करता है और श्रेष्ठ जनोंका सम्मान करना सिखाता है।

याद रखो—सांसारिक दुःख साध्यका स्मरण कराता है, विलास-भ्रमको भंग कर देता है, आत्मशक्तिको प्रकाशित करता है और मानव-जीवनको सफलताकी ओर ले जाता है।

याद रखो—सांसारिक दुःख तुम्हें धर्ममें लगाता है, ईश्वरके आश्रयमें ले जाता है, आत्माका उत्थान करता है और नरक-यन्त्रणासे बचाकर सद्गति प्राप्त कराता है।

याद रखो—मोहके कारण ही तुम सांसारिक भोगसुखोंको चाहते हो और सांसारिक दुःखोंको भयानक मानकर उनसे भागना चाहते हो। विश्वास करो, जो सुख भगवान्का विस्मरण कराकर भगवान्की ओर अरुचि उत्पन्न कर दे, उसके समान कोई भी हमारा शत्रु नहीं है। और जो दुःख विषयोंसे हटाकर भगवान्की ओर लगा दे, उसके समान हमारा कोई मित्र नहीं है। इसी प्रकारके सुख-दुःखोंकी यह बात है और इसी दृष्टिसे सांसारिक सुख-दुःखका निरीक्षण और परीक्षण करके उनसे लाभ उठाना चाहिये। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती महिषासुरमर्दिनी
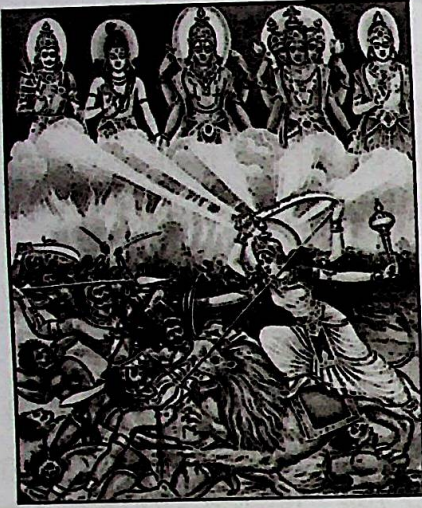
पूर्वकालकी बात है, रम्भ दानवका महिषासुर नामक एक प्रबल पराक्रमी तथा अमित बलशाली पुत्र था। उसने अमर होनेकी इच्छासे ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठिन तपस्या की। उसकी दस हजार वर्षोंकी तपस्याके बाद लोकपितामह ब्रह्मा प्रसन्न हुए। वे हंसपर बैठकर महिषासुरके निकट आये और बोले—'वत्स! उठो, अब तुम्हारी तपस्या सफल हो गयी। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। इच्छानुसार वर माँगो।' महिषासुरने उनसे अमर होनेका वर माँगा।

ब्रह्माजीने कहा—'पुत्र! जन्मे हुए प्राणीका मरना और मरे हुए प्राणीका जन्म लेना सुनिश्चित है। अतएव एक मृत्युको छोड़कर, जो कुछ भी चाहो, मैं तुम्हें प्रदान कर सकता हूँ।' महिषासुर बोला—'प्रभो! देवता, दैत्य, मानव किसीसे मेरी मृत्यु न हो। किसी स्त्रीके हाथसे मेरी मृत्यु निश्चित करनेकी कृपा करें।' ब्रह्माजी 'एवमस्तु' कहकर अपने लोक चले गये।

वर प्राप्त करके लौटनेके बाद समस्त दैत्योंने प्रबल पराक्रमी महिषासुरको अपना राजा बनाया। उसने दैत्योंकी विशाल वाहिनी लेकर पाताल और मृत्युलोकपर धावा बोल दिया। समस्त प्राणी उसके अधीन हो गये। फिर उसने इन्द्रलोकपर आक्रमण किया। इस युद्धमें भगवान् विष्णु और शिव भी देवराज इन्द्रकी सहायताके लिये आये, किंतु महाबली महिषासुरके सामने सबको पराजयका मुख देखना पड़ा और देवलोकपर भी महिषासुरका अधिकार हो गया।

भगवान् शंकर और ब्रह्माको आगे करके सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और महिषासुरके आतंकसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय पूछा। भगवान् विष्णुने कहा—'देवताओ! ब्रह्माजीके वरदानसे महिषासुर अजेय हो चुका है। हममेंसे कोई भी उसे नहीं मार सकता है। आओ! हम सभी मिलकर सबकी आदि कारण भगवती महाशक्तिकी आराधना करें।' फिर सभी लोगोंने मिलकर भगवतीकी आर्तस्वरमें प्रार्थना की। सबके देखते-देखते ब्रह्मादि सभी देवताओंके शरीरोंसे दिव्य तेज निकलकर एक परम सुन्दरी स्त्रीके रूपमें प्रकट हुआ। भगवती महाशक्तिके अद्भुत तेजसे सभी देवता आश्चर्यचकित हो गये। हिमवान्ने भगवतीको सवारीके लिये सिंह दिया तथा सभी देवताओंने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र महामायाकी सेवामें प्रस्तुत किये। भगवतीने देवताओंपर प्रसन्न होकर उन्हें शीघ्र ही महिषासुरके भयसे मुक्त करनेका आश्वासन दिया।

पराम्बा महामाया हिमालयपर पहुँचीं और अट्टहास-पूर्वक घोर गर्जना कीं। उस भयंकर शब्दको सुनकर दानव डर गये और पृथ्वी काँप उठी। महिषासुरने देवीके पास अपना दूत भेजा। दूतने कहा—'सुन्दरी! मैं महिषासुरका दूत हूँ। मेरे स्वामी त्रैलोक्यविजयी हैं। वे तुम्हारे अतुलनीय सौन्दर्यके पुजारी बन चुके हैं और तुमसे विवाह करना चाहते हैं। देवि! तुम उन्हें स्वीकार करके कृतार्थ करो।'

भगवतीने कहा—'मूर्ख! मैं सम्पूर्ण सृष्टिकी जननी और महिषासुरकी मृत्यु हूँ। तू उससे जाकर यह कह दे कि वह तत्काल पाताल चला जाय, अन्यथा युद्धमें उसकी मृत्यु निश्चित है।'

दूतने अपने स्वामी महिषासुरको देवीका सन्देश दिया। भयंकर युद्ध छिड़ गया। एक-एक करके महिषासुरके सभी सेनानी देवीके हाथोंसे मृत्युको प्राप्त हुए। महिषासुरका भी भगवतीके साथ महान् संग्राम हुआ। उस दुष्टने नाना प्रकारके मायिक रूप बनाकर महामायाके साथ युद्ध किया। अन्तमें भगवतीने अपने चक्रसे महिषासुरका मस्तक काट दिया। देवताओंने भगवतीकी स्तुति की और भगवती महामाया प्रत्येक संकटमें देवताओंका सहयोग करनेका आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गयीं। [श्रीमद्देवीभागवत]

गृहस्थाश्रममें गृहिणीका महत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

उत्तम राजा उत्तानपादके दूसरे पुत्र और महाभागवत ध्रुवके छोटे भाई थे। शत्रु और मित्रमें तथा अपने और परायेमें उनका समान भाव था। वे दुष्टोंके लिये यमराजके समान भयंकर और साधुपुरुषोंके लिये चन्द्रमाके समान शीतल एवं आनन्ददायक थे। उनका अपनी पत्नीमें बड़ा प्रेम था। वे सदा रानीके इच्छानुसार चलते थे, परंतु रानी कभी उनके अनुकूल नहीं होती थी। एक बार अन्यान्य राजाओंके सामने रानीने उनकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया। इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने द्वारपालसे कहकर रानीको निर्जन वनमें छुड़वा दिया।

एक दिन एक ब्राह्मण उनके द्वारपर आया और प्रार्थना करने लगा कि 'मेरी स्त्रीको रातमें कोई चुरा ले गया, अतः उसका पता लगाकर ला देनेकी कृपा करें।' राजाके पूछनेपर ब्राह्मणने यह भी बताया कि 'मेरी स्त्री बड़े ही क्रूर स्वभावकी और कुरूपा है तथा वह वाणी भी कटु बोलती है।' इसपर राजाने कहा—'ऐसी स्त्रीको लेकर क्या करोगे? मैं तुम्हें दूसरी भार्या ला देता हूँ।'

इसपर ब्राह्मणने बताया कि 'पत्नीकी रक्षा करना पतिका धर्म है, उसकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है और वर्णसंकर अपने पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिरा देता है।' उसने यह भी कहा कि 'पत्नीके न रहनेसे मेरे नित्यकर्म छूट रहे हैं; इससे प्रतिदिन धर्ममें बाधा आती है, जिससे मेरा पतन अवश्यम्भावी है।'

ब्राह्मणके अधिक आग्रह करनेपर राजा उसकी स्त्रीकी खोजमें गये और इधर-उधर घूमने लगे। जाते-जाते एक वनमें उन्हें किसी तपस्वीका आश्रम दिखायी दिया। रथसे उतरकर वे आश्रममें गये। वहाँ उन्हें एक मुनिका दर्शन हुआ। मुनिने खड़े होकर राजाका स्वागत किया और शिष्यसे उनके लिये अर्घ्य ले आनेको कहा। शिष्यने धीरेसे पूछा—'महाराज! क्या इन्हें अर्घ्य देना उचित होगा? आप विचारकर जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही किया जायगा।' तब मुनिने ध्यानद्वारा राजाके वृत्तान्तको जानकर केवल आसन दे, बातचीतके द्वारा सत्कार किया। राजाने मुनिसे इस व्यवहारका कारण जानना चाहा। इसपर मुनिने उन्हें बताया कि 'मेरा शिष्य भी मेरी ही भाँति त्रिकालज्ञ है, उसने आपका वृत्तान्त जानकर मुझे सावधान कर दिया। बात यह है कि आपने अपनी विवाहिता पत्नीका त्याग कर दिया है और इसके साथ ही आप अपना धर्म-कर्म भी छोड़ बैठे हैं। एक पखवाड़ेतक भी नित्यकर्म छोड़ देनेसे मनुष्य अस्पृश्य हो जाता है, आपने तो उसे एक वर्षसे छोड़ रखा है। नरेश्वर! पतिका स्वभाव कैसा ही हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभावकी पत्नीका भी पालन-पोषण करे।* ब्राह्मणकी वह पत्नी, जिसका अपहरण हुआ है, सदा अपने पतिके प्रतिकूल चलती थी; तथापि धर्मपालनकी इच्छासे वह आपके

* पक्षेण कर्मणो हान्या प्रयात्यस्पृश्यतां नरः। किमत्र वार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्मणः॥
पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथाशीलेऽपि भर्तरि। दुःशीलापि तथा भार्या पोषणीया नरेश्वर॥ (मार्कण्डेयपुराण ६९। ५८-५९)

पास गया और उसे खोजकर ला देनेके लिये उसने आपसे बार-बार आग्रह किया। आप तो धर्मसे विचलित हुए दूसरे-दूसरे लोगोंको धर्ममें लगाते हैं; फिर जब आप स्वयं ही विचलित होंगे, तब आपको धर्ममें कौन लगायेगा?' मुनिकी फटकार सुनकर राजा बड़े लज्जित हुए, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की। इसके बाद मुनिसे खोयी हुई ब्राह्मणपत्नीका हाल जानकर राजा उसकी खोजमें गये और जहाँ वह थी, वहाँसे उसे उसके पतिके पास पहुँचवा दिया। ब्राह्मण अपनी पत्नीको पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

इसके बाद वे अपनी रानीका पता लगानेके लिये पुनः उन महर्षिके पास आये। महर्षिने उन्हें अवसर देखकर फिर कहा—'राजन्! मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धिका कारण है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न रहनेपर वह कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। जैसे स्त्रीके लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये स्त्रीका त्याग भी उचित नहीं है।' मुनिने उन्हें यह भी बताया कि पाणिग्रहणके समय राजापर सूर्य, मंगल और शनैश्चरकी तथा उनकी पत्नीपर शुक्र और बृहस्पतिकी दृष्टि थी। उस मुहूर्तमें रानीपर चन्द्रमा और बुध भी, जो परस्पर शत्रुभाव रखनेवाले हैं, अनुकूल थे और राजापर उन दोनोंकी वक्रदृष्टि थी। यही कारण था कि रानी राजासे सदा प्रतिकूल रहती थी। इसपर राजाने रानीकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये मित्रविन्दा नामक यज्ञका अनुष्ठान कराया। जिन स्त्री-पुरुषोंमें परस्पर प्रेम न हो, उनमें मित्रविन्दा प्रेम उत्पन्न करती है। इसके बाद राजाने रानीको एक राक्षसकी सहायतासे पाताललोकसे बुलवाया और दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम हो गया।

यह इतिहास बड़ा ही शिक्षाप्रद है। इससे हमें अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ मिलती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा तो इससे यह मिलती है कि हिन्दूधर्म पतिके द्वारा पत्नीके अथवा पत्नीके द्वारा पतिके त्यागकी आज्ञा नहीं देता। किसी भी अवस्थामें पति-पत्नीका सम्बन्धविच्छेद हिन्दूधर्मको मान्य नहीं है।

राजाओंको इससे यह शिक्षा मिलती है कि प्रजाको धर्ममें लगाने और अधर्मसे रोकनेकी जिम्मेवारी राजापर होती है; यदि राजा भी अपना धर्म छोड़ दें तो फिर प्रजा धर्ममें स्थित कैसे रह सकती है? राजाओंका भी नियन्त्रण तपस्वी, धर्मनिष्ठ, अकिंचन एवं सत्यवादी ब्राह्मण लोग करते थे, जो सर्वथा निःस्पृह, निष्पक्ष एवं निर्भय होते थे और धर्मसे विचलित होनेपर राजाओंको साहसपूर्वक डाँट देते थे। तीसरी शिक्षा यह मिलती है कि संध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन आदि कर्म द्विजातिमात्रके लिये अनिवार्य हैं और इन्हें एक पखवाड़ेतक त्याग देनेपर भी मनुष्य पतित हो जाता है—अस्पृश्य हो जाता है। जबसे हमलोगोंने नित्यकर्म छोड़ दिया, तभीसे समाजमें पापका प्रवेश हो गया और फलतः हमलोग दीनता-दरिद्रता, परतन्त्रताके शिकार बन गये और नाना प्रकारके शत्रुओंसे हमारा पराभव होने लगा। चौथी शिक्षा इस आख्यानसे यह मिलती है कि ग्रहोंका हमारे जीवन एवं दाम्पत्य-सुखके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और विवाहादि सम्बन्ध करते समय तथा पाणिग्रहण आदिके समय ग्रहोंका विचार परमावश्यक है। ग्रहोंकी स्थिति अनुकूल न होनेपर दाम्पत्य-सुखमें बाधा पहुँच सकती है।

क्या ईश्वरको पानेके बाद भी कुछ पाना शेष है ?

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

दशरथजीने श्रीरामको पा लिया है। इसका अभिप्राय यह है कि वे ईश्वरको पा चुके हैं। अब जो ईश्वरको पा ले, उसके लिये क्या और कुछ पाना शेष रह जाता है? लेकिन 'श्रीरामचरितमानस' के कई पात्रोंके सन्दर्भमें यह बात हमें पढ़ने और सुननेको मिलती है कि ईश्वरको पा लेनेपर भी जीवनमें कुछ पाना शेष रह जाता है। उस शेष रह जानेका क्या तात्पर्य है, इसका संकेत हमें दशरथजीके चरित्रमें भी प्राप्त होता है।

गोस्वामीजी अयोध्याकाण्डका प्रारम्भ ही यह बताते हुए करते हैं कि दशरथजीके सौभाग्यकी सब लोग प्रशंसा कर रहे हैं, जो उन्होंने रामको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया है। चारों ओर एक ही ध्वनि गूँजती है कि—

तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥

तीनों भुवनोंमें दशरथजीके समान बड़भागी और कोई नहीं है। उनके समान कोई न तो आजतक हुआ, न अभी है और न भविष्यमें होगा। ऐसे सौभाग्यशाली दशरथजीको श्रीरामको पा लेनेके बाद, उनको देख लेनेके बाद और किसी बातकी आवश्यकता है या नहीं और समूचे अयोध्याकाण्डमें, यही क्यों पूरे श्रीरामचरितमानसमें ही, इसी आवश्यकताका संकेत किया गया है। जब दशरथजीने अपने सौभाग्यकी इतनी सराहना सुनी, तब तो उन्हें फूल जाना चाहिये था, पर गोस्वामीजी लिखते हैं कि वे प्रशंसासे फूलते नहीं, अपितु—

रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥

वे अचानक शीशा उठाकर उसमें अपना मुँह देखने लगते हैं। यह गोस्वामीजीकी सांकेतिक भाषा है। शीशेमें अपनेको देखनेका तात्पर्य है—आत्मनिरीक्षण करना।

श्रीराम तो सर्वत्र हैं, पूर्ण हैं, पर मात्र उनकी पूर्णताको देखकर हमारे जीवनमें धन्यता नहीं आ सकती। वह तो तब आयेगी, जब हम पूर्णताको देखकर अपने जीवनकी अपूर्णता—कमीको देखनेकी प्रेरणा प्राप्त करेंगे और उस अपूर्णताको दूर करेंगे। हम यदि केवल पूर्णताको देखते रहें और उससे अपने जीवनकी अपूर्णताको देखनेकी तथा देखकर उसे पूर्णतामें परिवर्तित करनेकी प्रेरणा न प्राप्त करें, तो पूर्णताकी हमारी प्रशंसा मात्र शब्दोंका ही खेल होगी। जैसे एक भिखारी किसी धनी आदमीके धनकी प्रशंसा करने लगे, तो उससे उसकी दरिद्रता दूर नहीं होगी, इसलिये उसकी उस प्रशंसाको सार्थक नहीं कहा जायगा। पर यदि उसके अन्त:करणमें धनीके धनको देख अपनी दरिद्रताको दूर करनेकी लालसा उत्पन्न हो, तो उसका यह देखना और धनीकी प्रशंसा करना सार्थक होगा। इसी प्रकार पूर्णको देखनेकी सार्थकता तब है, जब व्यक्ति अपनी अपूर्णताको देखे और उसे दूर करनेकी चेष्टा करे। दशरथजीने इसीलिये दर्पण देखा।

अब दर्पण बड़ी अनोखी वस्तु है। दर्पणसे बढ़कर कोई वस्तु प्रिय नहीं है और उससे बढ़कर झगड़ालू वस्तु भी कोई नहीं। जब व्यक्ति स्वयं दर्पण देखता है, तो बड़ा प्रसन्न होता है, लेकिन यदि कोई दूसरा कह दे कि शीशेमें मुँह देख लो, तो झगड़ा हुए बिना नहीं रहेगा। इसमें संकेत यह है कि व्यक्ति अपनी कमी स्वयं देखना चाहता है, पर यदि कोई दूसरा हमारी कमीकी ओर इंगित करता है, तो हमें चोट पहुँचती है और हम क्षुब्ध हो उस व्यक्तिके प्रति अपना रोष प्रकट करते हैं। तो, दर्पण देखनेका सही अर्थ यह हुआ—अपनी आँखोंसे अपनी कमियोंको पहचानना। जिन दशरथने श्रीरामको—ईश्वरको पाया, वे जब दर्पणमें अपनेको देखते हैं, तो उन्हें स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें कोई कमी है। उन्हें लगता है कि भले ही लोग कहते रहें कि दशरथके समान भाग्यशाली और कोई नहीं है, पर जबतक मेरे जीवनमें कमी है, अपूर्णता है, तबतक ईश्वरके दिये हुए सौभाग्यको पाकर भी मैं पूरी तरहसे अपने जीवनकी कृतकृत्यताका अनुभव नहीं कर सकता।

भगवान्‌की प्राप्तिसे भी बढ़कर है भगवान्‌की भक्तिकी प्राप्ति। दशरथजीने रामको पुत्र ही माना था, परमात्मा नहीं, जबकि पूर्ण परात्पर ब्रह्मकी प्राप्ति ही पूर्णता है और परमात्मरूपमें भक्तिसे ही उसकी प्राप्ति होती है।

भगवान्‌की लीला और मंगलविधान

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसार अनित्य, अपूर्ण और क्षणभंगुर है। 'सृष्टि और प्रलय' इसका स्वरूप है, 'जन्म-मृत्यु' इसका स्वभाव है। यह न तो सदा एकरस रहता है, न एकरूप। इसमें बनने-बिगड़नेकी लीला चलती ही रहती है। सुखान्त-दुःखान्त नाटक ही इसका आकार है। इस सारी लीलामें वर्तमान आद्यन्तवन्तहीन नित्य सत्य एकरस वस्तु है—लीलामय भगवान्, वही स्वयं लीला बना हुआ नित्य लीला करता है। उसकी लीलाके देखनेवाले जन्म-मृत्यु, सृजन-संहार दोनोंमें ही उसके लीला-चमत्कारको देखकर, दोनोंमें ही उसकी अभिनय-चातुरीको देख-देखकर पद-पदपर उसे पहचानकर प्रसन्न होते रहते हैं, या स्वयं ही अभिनेताके रूपमें उसके इंगित या विधानके अनुसार जन्म और मरणका अभिनय करते हुए सदा निर्लेप तथा परम प्रसन्न रहते हैं। पर जो इस बातको नहीं समझते—जो अभिनयके लिये मिले हुए नाम-रूपमें, शरीरमें और नाममें 'मैं' पनका आरोप किये रहते हैं, वे मेरे-तेरे, राग-द्वेष, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, सृजन-संहारको सत्य मानकर इस द्वन्द्वके चक्रमें पड़े विनाशके भय और विनाशके पश्चात् शोकमें डूबे रहते हैं। अनादिकालसे अबतक अनन्त बार इस प्रपंचका सृजन हो चुका, अनन्त बार इसका संहार हो चुका। प्रलय, खण्डप्रलय, महाप्रलय और पुनः सृजन—भगवान्‌की प्रकृतिके राज्यमें सदा होते ही रहते हैं—होते ही रहेंगे। यहाँ 'क्रम विकास' नहीं, परंतु चक्रवत् चढ़ाव-उतारकी, सृजन-संहारकी लीला चलती ही रहेगी। इस लीलाका लीलाभावसे ही अनुभव करना चाहिये। एक कुशल अभिनेताकी भाँति जगन्नाटकके नाट्यमंचपर सब कुछ करते-देखते हुए ही सदा आसक्तिरहित, अखण्ड भगवद्भावमय रहना चाहिये। इसीमें मानवकी मानवताका विकास है और इसीसे आत्यन्तिक अखण्ड परा शान्ति और परम सुखकी प्राप्ति होती है।

ग्रह-नक्षत्र भी लीलामय भगवान्‌के मंगल विधानानुसार उनकी लीलामें अपनेको पात्र बनाकर यथायोग्य अभिनय किया करते हैं, करते ही रहेंगे; तथा कर्म, ग्रहके नियमानुसार कार्य तथा परिणाम भी होते ही रहेंगे। संसारमें फलकी ओर न देखकर अनासक्त भावसे यथायोग्य कर्म करते रहना तथा स्वकर्मके द्वारा भगवान्‌की पूजामें रत रहना ही परम कर्तव्य है। भगवान्‌ने (गीता ३। ९)-में कहा है—

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।

'कुन्तीनन्दन! उन भगवान्‌की सेवाके लिये आसक्ति-रहित होकर भलीभाँति कर्म करते रहो।' 'अपने-अपने कर्मके द्वारा उस भगवान्‌की पूजा करके मनुष्य सिद्धिको—जीवनकी सफलताको प्राप्त करता है।'

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

अतएव यथार्थ कल्याणकारी भाव तथा सिद्धान्त तो यही है कि यथायोग्य भगवत्सेवाके भावसे मनुष्य अपना कर्म करता रहे एवं सदा हर-समय हर-अवस्थामें परम प्रसन्न रहे। यहाँके विनाशसे आत्माका विनाश नहीं होता और न यहाँके सुख-सौभाग्य या लाभसे ही आत्माको कोई लाभ होता है।

दूसरी दृष्टिसे संसारमें जीवोंके कर्मवश प्रलय-महाप्रलयके काण्ड हुआ करते हैं। यद्यपि ये होते हैं नियमानुसार ही तथा पूर्वरचित ही। महाभारतके महासमरमें भयानक संहार हुआ, पर वह भगवान्‌ने पहलेसे ही रच रखा था। यह उन्होंने अपने विराट्‌रूपमें अर्जुनको दिखा दिया, अर्जुनने देखा और कहा—

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥

अर्थात् (भीष्मादि सभी वीर) आपके विकराल दाढ़ोंवाले भयानक मुखोंमें बड़े वेगसे प्रवेश कर रहे हैं। उनमें कुछके मस्तकादि उत्तमांग आपके दाँतोंमें चूर्ण-विचूर्ण हुए लग रहे हैं।

और भगवान्‌ने भी स्वयं कहा—

मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥

(गीता ११। ३३)

'ये सब पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, तुम तो हे सव्यसाची! केवल निमित्त बनो।' तथापि एक साथ एक जगह संहार होनेपर मनुष्य उसे आकस्मिक विपत्ति मान लेता है, डर जाता है। परंतु वास्तवमें उससे होता है परम मंगल ही; क्योंकि विपत्तियोंसे हमारी पापवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, फिर आत्मा तो अविनाशी है ही।

कर्म और भाग्य

(श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरीजी महाराज)

वैसे तो कुछ भी करनेका नाम 'कर्म' है; परन्तु जो कुछ बुद्धिपूर्वक किया जाता है, वास्तवमें कर्म उसीका नाम है। वैसे किसी भी हरकतका नाम क्रिया है। कर्म भी एक क्रियारूप है, परन्तु जो क्रियाएँ उद्देश्यपूर्वक की जाती हैं या होती हैं, यही वास्तवमें कर्म कहे जाते हैं। ये चार प्रकारके हैं—१-शुक्ल, २-कृष्ण, ३-शुक्ल-कृष्ण, ४-अशुक्ल-कृष्ण।

शुक्ल—जो संसारमें सुखको उत्पन्न करेंगे, वे पुण्यरूप शुक्ल, स्वच्छ या शुभ कर्म कहे जाते हैं।

कृष्ण—जो दुःख देनेवाले या दुःखको उत्पन्न करनेवाले कर्म किये जाते हैं या होते हैं, वे सब पाप-कर्मरूप कृष्णकर्म कहे जाते हैं।

शुक्ल-कृष्ण—जो मिश्रित कर्म पुण्य-पाप दोनोंको करनेवाले हैं, वह शुक्ल-कृष्ण कहे जाते हैं। कुछ तो इनमेंसे बहुतोंके भलेके लिये किये जाते हैं। उनमें सुख अधिक, दुःख कम होता है और जिसमें अपना स्वार्थ अधिक, परन्तु दूसरेकी भलाई अल्प हो, इससे दुःख अधिक होता है, सुख कम। यह कर्म सब शुक्ल-कृष्ण कहे जाते हैं। ऐसे कर्मोंमें हिंसा-असत्यादि—यह पापका अंश होता है। परन्तु दूसरेका हित भी इनसे होनेके कारण पुण्यरूप भी हैं। बहुतसे लोगोंके हित किसीने दुष्ट जीवको दण्ड दिया। इससे बहुतसे जनोंको सुख हुआ। इस प्रकार पुण्यरूप; और हिंसासे मिश्रित होनेके कारण पापरूप होनेसे यही मिश्रित कर्म शुक्ल-कृष्ण होते हैं।

अशुक्ल-कृष्ण—यह वे कर्म हैं, जो मोक्षको देनेवाले हैं। वैराग्य, क्षमा, शील, सन्तोष, त्याग, तप इत्यादि-इत्यादि और भी मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, क्षमा, शील, दान, ध्यान, समाधि एवं प्रज्ञा आदि गुणोंको उपजाना—ये सब अशुक्ल-कृष्ण कर्म हैं। बिना बाह्य उद्देश्यके स्वार्थको त्यागकर निष्काम भावसे जो भी कर्म किये जायँगे, वे चाहे शरीरसे हों या इन्द्रियोंसे, सब अशुक्ल-कृष्ण नामसे मोक्षशास्त्रमें बतलाये गये हैं। न अधिक दुःखमें रहना और न अधिक सुखमें, युक्ति-युक्त मध्यमार्गकी चर्चा भी सब इसी श्रेणीका पुण्य कर्म है।

ये सब प्रकारके कर्म तीन रूपोंमें मनुष्यके अन्तःकरणमें बैठे रहते हैं। संचित, आगामी और प्रारब्धरूपसे क्रमशः ये तीन प्रकारके होते हैं। जो इनमेंसे इस कायाको आरम्भ करके सुख-दुःखरूप फल देनेको प्रस्तुत होते हैं, यही प्रारब्ध कर्म कहे जाते हैं और जो अभी होते जा रहे हैं और आगे फल देंगे, वह आगामी कहे जाते हैं। जो शेष पड़े हुए मनमें संचित-रूपसे एकत्र हुए-हुए भोगनेमें अभी नहीं आये और न कोई शीघ्र आगे भोगनेमें आनेका अवकाश ही है। वह सब अनन्त समयसे एकत्र हुए-हुए संचितरूप कर्मोंकी कक्षामें पड़े रहते हैं। यही सब संचित कर्म कहे जाते हैं। यह भी अपने-आप पड़े हुए कभी भी नष्ट नहीं होते, केवल ज्ञानकी अग्निसे ही दग्ध हो जाते हैं, जो कि आत्मसाक्षात्काररूप है। यह साक्षात्कार सब बन्धनों (अविद्या आदि १० बन्धनों)-के पूर्णतया नष्ट होनेपर ही होता है और उससे सब कर्म जलकर भस्म हो जाते हैं।

वर्तमान दुःख-सुखके भोगसे तो केवल प्रारब्ध ही समाप्त होता है और शेष कर्मजाल तो उस ज्ञानाग्निसे ही समाप्त होता है। हो सकता है कोई एक जन इतना परिश्रम इसी संसारमें रहकर कर सके कि जिससे उसके सूक्ष्म क्लेश भी मैत्री आदि बलोंकी प्रबल भावनासे नष्ट हो जायँ और प्रतिप्रसव (क्लेशोंके विपरीत उत्तम गुण उपजानेसे)-द्वारा उसके मैत्री आदिसे ही नवीन पुण्य उदय हो जायँ और प्रथमका भाग्य भी क्षीण होकर उसकी ऐच्छिक चर्या अर्थात् इच्छानुसार शुद्ध जीवनकी विभूति पाना-रूप फलकी प्राप्ति कर दे और वह पूर्णकाम-रूपसे जबतक चाहे इस संसारमें विहार करे और अपनेमें देहत्यागपर्यन्त पूर्ण सामर्थ्यको रखे और उसीके साथ रहे और कुछ भी विपरीत न पड़ने दे। परन्तु ऐसा व्यक्ति पुनः-पुनः अवताररूपसे ही आदृत हो जाता है। यदि वह जगत्‌में प्रकट हुआ तो, यदि प्रकट न हुआ तो, सिद्धरूपसे सिद्ध कायामें गुप्त भले रहे। सबमें उसका प्रकट होना अतीव कठिन होता है। अस्तु! मनुष्यको इतना इस ऊपर कही स्थितिके लिये लालायित तो नहीं होना चाहिये, परन्तु मोक्षका साधन करते-करते सारा जीवन धर्मसे ही व्यतीत करना उचित है। जो भाग्यसे आन पड़े, उसमें विवेकको जाग्रत् रखे तथा स्मृति और मनकी उपस्थिति रखे। विपरीत कुछ न होने दे। भाग्य क्षीण हो या नहीं, इस चक्रमें न पड़े। मोक्षप्राप्ति तो अपने साधनसे अवश्य हो ही जायगी।

[प्रेषक—श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग]

साधकोंके प्रति—

अनुभवके आदरसे कल्याण

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर अपने उद्धारके लिये ही दिया है। इसके साथ ही उन्होंने ऐसी बातें भी मनुष्यके सामने रखी हैं, जिनका वह ठीक तरहसे अनुभव करे तो उसका उद्धार बहुत ही सरलतापूर्वक हो सकता है।

विचार करनेसे एक बात सभीके अनुभवमें आती है कि जिसका संयोग होता है, उसका वियोग अवश्यम्भावी होता है; किंतु जिसका वियोग होता है, उसका संयोग अवश्यम्भावी नहीं होता। अतः वियोग हो ही जायगा। यह एक सत्य तथ्य है, अतः इन दोनोंमें वियोग ही प्रबल है। चाहे कितना ही संयोग हो जाय, वह रह नहीं सकता, किंतु वियोग तो रहेगा ही। वियोगके पश्चात् कारणवशात् पुनः संयोग हो भी जाय तो भी वह रहेगा नहीं, अतः इसे स्वीकार करनेमें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये। व्यक्ति अपने इस अनुभवपर डट जाय तो उसे शीघ्र ही बड़ा भारी आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

जिसका वियोग अवश्यम्भावी है, उसकी चिन्ता करनी व्यर्थ है। आप चाहे कितना ही उद्योग कर लें, किसी भी सांसारिक प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिको अपने साथ नहीं रख सकते एवं आप इनके साथ नहीं रह सकते। अतः बुद्धिमत्ता इसीमें है कि आप अपने प्रतिक्षण वियुक्त हो रहे संसारकी आसक्ति-कामनाका त्याग कर दें। सांसारिक संयोगकी इच्छा ही परमात्मप्राप्तिमें मूल बाधा है। इस संयोगमें प्रतिक्षण हो रहे वियोगपर दृष्टि रखनेसे परमात्माके साथ हमारे अटल सम्बन्धका अनुभव हो जाता है। गीतामें इसीको योग कहा गया है—

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।

(६।२३)

'जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये।'

भगवान्‌ने अन्यत्र समताको योग बतलाया है—**'समत्वं योग उच्यते'** (गीता २।४८)। सब दुःखोंके संयोगका वियोग होगा तो समता रहेगी ही। भगवान्‌के मतमें इस वास्तविकताका अनुभव कर लेना चाहिये; क्योंकि यह सर्वथा सच्ची बात है, घबरानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। जिसका वियोग अवश्यम्भावी है, उसका किसी भी क्षण वियोग हो जाय तो क्या बाधा आ गयी?

अनुभवसे यह सर्वथा सिद्ध है कि जाग्रत् एवं स्वप्नावस्थामें संसारका माना हुआ संयोग रहता है, अतः दुःख होता है। किंतु सुषुप्ति-अवस्थामें संसारको सर्वथा भूल जाते हैं, इसलिये दुःख नहीं होता। अतः दुःखका कारण संसारका माना हुआ संयोग ही है—यह स्पष्ट हुआ। इस माने हुए संयोगमें ही वियोगका अनुभव कर लेनेपर तीनों ही अवस्थाओंमें दुःख सर्वथा निवृत्त हो जाता है। जैसे हम किसी सरायमें जाकर ठहरते हैं तो यह बात बिलकुल नहीं जँचती कि हमें वहाँ सदा रहना है। वहाँ संयोगकालमें ही वियोगको मान लिया गया है। अतः उसे किसी भी समय छोड़नेपर दुःख नहीं होता। यही बात प्रत्येक सांसारिक पदार्थ एवं परिस्थितिके सम्बन्धमें समझ लेनी चाहिये। उदाहरणके लिये जिस प्रकार ट्रामगाड़ीका बिजलीके तारोंसे निरन्तर संयोग दीखता है, किंतु वास्तवमें ट्रामगाड़ीका बिजली के तारोंसे संयोग क्षणमात्र भी नहीं रहता। गाड़ीके निरन्तर गतिमान् रहनेके कारण वहाँ बिजलीके तारोंसे केवल वियोग-ही-वियोग है, और कुछ नहीं। संसारके संयोगमें वियोग देखनेका यह गीतोक्त योग वस्तुतः बड़ा ही विचित्र, सरल एवं अनुभवसिद्ध है। पतंजलिके योग

(चित्त-वृत्तियोंके निरोध)-से यह योग बहुत ही तेज एवं स्वाभाविक है। इसे प्राप्त करनेके लिये कोई भी व्यक्ति अपात्र, निर्बल, पराधीन एवं अयोग्य नहीं है, केवलमात्र वास्तविक स्थितिको स्वीकार कर लेनेकी ही आवश्यकता है।

परमात्माके साथ हमारा अटूट सम्बन्ध है एवं वे सभी देश, काल, अवस्था एवं क्रियाओंमें व्याप्त हैं। किंतु संसारका संयोग मान लेनेके कारण उस जगह परमात्मा न दीखकर संसार ही दीखने लग गया है। यदि संसारके इस माने हुए संयोगके स्थानपर वियोग मान लें, जो कि यथार्थतः है ही तो सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा ही दीखने लग जायँगे। इससे अधिक सरल और कोई साधन हो ही नहीं सकता; क्योंकि यह तथ्य सभीके अनुभवमें है। माने हुए संयोगको स्वीकार कर सकते हैं तो वियोगको क्यों नहीं कर सकते? संयोगसे वियोग प्रबल है। संयोग अवास्तविक है, किंतु वियोग वास्तविक है। संयोग रहनेवाला नहीं है, किंतु वियोग रहनेवाला है। अवास्तविक एवं नहीं रहनेवालेको स्वीकार कर सकते हैं तो वास्तविक एवं रहनेवालेको स्वीकार क्यों नहीं कर सकते? यह वियोग केवल मान्यतामात्र ही नहीं है, अपितु हमारे प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है कि प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थका हमसे प्रतिक्षण ही वियोग हो रहा है। अतः इसको स्वीकार कर लेनेमें कोई कठिनाई ही नहीं है।

प्रश्न किया जा सकता है कि संयोगकी भावनामें एक मिठासका अनुभव होता है, अतः उसे त्यागनेमें निर्बलता अनुभव होती है। किंतु वास्तवमें ऐसा मानना उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें यह प्रायशः देखा ही जाता है कि लोग बड़े लाभके लिये अपने छोटे लाभका त्याग कर देते हैं। लोगोंको रुपयोंमें रस आता है, किंतु ब्याजपर लाकर भी उनको व्यापारमें लगा देते हैं। किसलिये?—अधिक लाभके लिये। विचार करना चाहिये कि तत्त्वज्ञानसे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है? इस लाभकी प्राप्तिके पश्चात् तो और कुछ भी लाभ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, साधक बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं हो सकता। श्रीभगवान्‌ने कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।'

ऐसे महान् लाभके लिये तुच्छ संयोगजन्य रसका त्याग कर देना कोई विशेष बात नहीं है। त्याग नहीं करेंगे तो भी वह संयोग तो रहेगा नहीं, वियोग अवश्य ही हो जायगा। फलस्वरूप व्यक्ति दोनोंसे वंचित रहेगा—न संयोग रहेगा, न तत्त्वज्ञान होगा। हाँ, उन पदार्थों, प्राणियोंकी सम्बन्धात्मक स्मृति अवश्य रह जायगी, जो उसके भावी जन्म-मरण एवं दुःखका कारण बन जायगी।

भगवान्‌ने इस संसारको 'दुःखालय'की संज्ञा दी है। यहाँ दुःख-ही-दुःख मिलते हैं। आश्चर्य है कि लोग इस दुःखके संयोगको त्यागनेके लिये कटिबद्ध नहीं होते। यथार्थतः इसमें किसी भी परिश्रमकी अपेक्षा नहीं है। केवल जो है, उसको वैसा-का-वैसा ही स्वीकारमात्र करना है। यह प्रत्यक्ष समझमें आता है कि यावन्मात्र पदार्थ नाशकी ओर जा रहे हैं, दृश्यमात्र अदृश्यताको जा रहा है। ऐसा कोई सुख नहीं जो दुःखमें न परिणत होता हो, ऐसा कोई संयोग नहीं जो वियोगमें न बदलता हो। इनके पीछे अपना सम्पूर्ण जीवन ही लगा देना वस्तुतः बड़े भारी दुःख एवं अनर्थका विषय है, मनुष्यताका घोर पतन है। यह अन्धापन है, पशु-पक्षियोंकी तरह देखना है। अतएव अपने अनुभवका आदरकर मनुष्य-जीवनको सफल बना लेना चाहिये।

निकुंज-रसका वह एकान्त रहस्य!

(श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी)

वृन्दावनके नवनिकुंज सुखपुंज-महलका वह एकान्त रहस्य, जो केलिमालके मनमें बसा है, दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्रके विवेचनका विषय नहीं है। वेद और वेदान्त हाथ जोड़कर जिस रंगमहलके द्वारे खड़े हैं, उसमें न दास्य-भावका प्रवेश है और न शान्तरसका। जिस रसके वशीभूत होकर प्रभु ऊखलसे बँध जाते हैं, मैया संटी दिखाती है तो भयभीत हो जाते हैं, *'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'* का समग्र ऐश्वर्य जिस गोकुल-रसके आगे बेसुध है, नन्दबाबा और जसोदामैयाका हृदय जिस रसका अजस्र स्रोत है, वह अलौकिक वात्सल्यरस भी वृन्दावनकी सीमापर ही रह जाता है। और वह सख्यभाव, जिसे न प्रभुकी मर्यादाका ध्यान है, न उनके गौरवका, जो प्रभुके ऐश्वर्य और भय दोनोंसे अनभिज्ञ है; जो हरिसे धक्का-मुक्की करता है, आँखमिचौनी खेलता है और अपने मुखका ग्रास निकालकर प्रभुके मुखमें रख देता है, जो प्रभुसे दाँव लेता है और दाँव न देनेपर खुलासा कह देता है—*'जाति-पाँति हम सों बड़ नाँही नाँहिन बसत तिहारी छैंया,'* वह सख्यरस, जिसकी माधुरीमें डूबकर प्रभुको मैयाकी टेर भी सुनायी नहीं पड़ती, किंतु वह महा-महिमामय सख्य-रस भी वृन्दावनकी परिक्रमा ही किया करता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि शृंगार रसराज है और

उसका निवास व्रजयुवतियोंके मन और नयनोंमें है। नन्दनन्दनको छोड़कर कोई दूसरा उनके कटाक्षोंके मर्मको नहीं जान सकता। कोई कहे कि श्यामसुन्दर आ रहे हैं, तो व्रजांगना ऐसी पुलकित-प्रफुल्लित हो जाती हैं कि उनके गहने हाथोंमें ठस जाते हैं और जब यह सुध आती है कि कृष्ण मथुरासे नहीं लौटे, तो उनके आभूषण शिथिल हो जाते हैं, खिसकने लगते हैं। ब्रजयुवतियोंके हृदयका वह रस, जिसका एक छींटा लगनेसे आचार्य बृहस्पतिका शिष्य और ज्ञानियोंका अग्रगण्य उद्धव कातर हो गया था और वेदान्त, सांख्य, न्याय, मीमांसा, योग और वैशेषिकके अपने ज्ञानको जमुनाजीकी रेतीमें बिखेरकर नाचने लगा था, गाने लगा था—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्याम्
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(भागवत)

कुब्जाकी साधारण-रतिका आनन्द इतना बड़ा है, जिसके आगे ब्रह्मतक तुच्छ है, किंतु अपने आनन्दके ख्यालके कारण वहाँ स्वार्थ-भावना है। द्वारकाकी पटरानियोंकी समंजसा रति उससे अधिक महिमामय है; क्योंकि वहाँ स्वार्थ-भाव नहीं है, कर्तव्य-भाव है। गोपियोंकी समर्था-रति उनसे भी अधिक भाग्यशालिनी है; लेकिन उस त्रिविध रतिका रस भी वृन्दावनके घाटपर पानी भरता है। रसनिकुंजका वह एकान्त रहस्य! मायिक-रस या विषय-रसमें बेसुध साहित्यका कोई विद्यार्थी उस रसका विवेचन कर ही कैसे सकता है? केलिमालके उस रस-दर्शनके लिये तो वृन्दावनके रसिकभक्तोंका अनुगत होना ही एकमात्र साधन है। उनकी अनुभूति ही एकमात्र प्रमाण है—***हरिदास बिना हरि को है कहाँ कौ?***

प्रिया-लालका वह रंगमहल, वह कला-कुतूहल, सौंदर्य-माधुर्यका वह नवल-विलास, जिसकी सुख-सेज

केलिमालकी नैन-पुतरियोंमें है, निरतिशय आनन्दकी वह अनुभूति तर्कशास्त्रके भाग्यमें नहीं बदी है। उस रस-विलासकी लालसामें ठाकुरको अपना प्रभाव और प्रताप भी किरकिरा लगता है—

ताहि सुहाय न ठकुरई बड़ प्रताप विस्तार।
जाँचत दै दिन जीविका सखि मोहि अहार-विहार॥
प्रान पलित पाँयन परै परसें होत निहाल।
यहै दशा सेवत सखी दूलह-दुलहिन लाल॥

केलिमालका यह रस विशुद्ध प्रेमका रस है। वह सहज स्वभाव-सिद्ध प्रेम है, उसका स्वभाव ही प्रेम है, इसलिये वहाँ प्रेमका कोई हेतु नहीं है। रूप, गुण और ऐश्वर्य आदि वहाँ बहुत छोटी बातें हैं। दूसरी प्रमुख बात यह है कि वहाँ रसान्तर्य नहीं है, रसभेद नहीं है, रसका मिश्रण नहीं है। जन्म इत्यादिकी जो व्रज-लीलाएँ हैं, वहाँ ऐश्वर्य भी है और स्थूल रसका मिश्रण भी है किंतु केलिमालके रसमें सतत नवयौवनके जोरमें विभोर छिन-छिन नव-नवायमान नव-किशोर वयस् है, क्योंकि ***'और वैस या रस में बाधा'*** है। निकुंजविहारमें न एक ग्रास आरोगनेकी सुध है, न एक घूँट जल पीनेकी। भोजन-पानीकी स्थूलता महारसविलासके आनन्दमें बाधा है।

रोम रोम तन यह सुख विलसत,
　　भोजन भूख न प्यास।
रसिक बिहारी मगन रहत नित,
　　सहत न खटक उसास॥

निकुंजमें न दिन है, न रात है; न नींद है, न भूख है। प्रथम समागमका पहला क्षण है। नित्य-निरन्तर अविना सम्बन्ध सिद्ध है, एक-दूसरेसे विलग होनेकी कल्पनातक नहीं, फिर भी कैसा है यह मिलन, कि ***'मिलेइ रहत मानों कबहुँ मिले न'*** भावोंकी वहाँ कैसी सुकुमारता है कि ***'साँस समुझि सुर बोलियै डोल नयन की कोर।'*** वह सुकुमारता जहाँ शब्द भी खटक सकते हैं, चुभ सकते हैं। श्रीजीको इसीलिये बोलनेमें भी आलस है। रसके उस आवेशमें जो आधे-आधे बोल बरबस निकल जाते हैं, उन्हींसे प्राणोंका पोषण होता है—***'प्रानन कों पोषत सुनियत तेरे वचन आधे-आधे।'*** और केलिमालकी रचना उन्हीं आधे-आधे बोलोंसे हुई है। और उन बोलोंकी दिशा वैखरीसे मध्यमा, मध्यमासे पश्यन्ती और पश्यन्तीसे पराकी ओर है। वह **'परा यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः'** जिस रसके विवेचनके समय सर्वज्ञ विधाताके पास भी शब्दोंका अभाव हो गया है। शब्दोंकी दरिद्रता हो गयी।

केलिमालमें सत्रह पदोंमें 'रस' शब्दका प्रयोग हुआ है और उन सभी स्थानोंपर 'रस' शब्दसे प्रेमका वही आवेश, रहःकेलिकी वह तन्मयता, आनन्दका वही एकान्त व्यंजित हुआ है। केलिमालमें श्यामसुन्दर प्रियाजीके प्रेम-रसविवश हैं। प्रेम-रसपानके लिये वे लाड़लीको नाना भाँति रिझाते हैं, मोरोंके साथ नाचते हैं। श्रृंगार-कुंजमें उनके मनमें लालसा होती है कि उन्हें राधाकी वेणी गूँथनेका सौभाग्य प्राप्त हो। वे कोमल कर ककही कंघीसे राधाका केश-शृंगार करते हैं। सच बात तो यह है कि केलिमालमें वह सौन्दर्य है, जिसकी एक किरण भी मनमें आ विराजे तो सर्वत्र सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य खिल उठता है। वह पूर्ण सौन्दर्य जो देश और कालकी सीमामें नहीं बँधा। वहाँ द्रष्टा और दृश्य एकरस हो जाते हैं। वह सौन्दर्यकी भंगिमा, वह छवि कौन-सी तूलिकासे अंकित की जाय। वह शोभा, जिसपर दृष्टि पड़ती है तो आँखें इधर-से-उधर हिल नहीं पातीं, जड़ीभूत हो जाती हैं। किन्नरी और देवांगना उस रूपकी झलक पा जायँ तो नाखूनसे धरती कुरेदने लगें। चन्द्रमा उसे देखते ही लज्जित हो जाय और कामदेव उसकी झाँकी पा ले तो सुध-बुध खो बैठे। वह शोभा प्रतिपल, प्रतिक्षण नवीन बनी रहती है और यह नवीनता ही उसकी एकमात्र अवस्था है—***यह कौन बात जो अबही और, अबही और, अबही और।*** केलिमालमें सौन्दर्यका अनन्त विस्तार है, परंतु सौन्दर्यकी प्यास सदा बनी रहती है। सुन्दरताकी वह प्यास शाश्वत है और यही प्यास केलिमालका रसदर्शन है।

मन, वाणी और कर्मके ऐक्यका महत्त्व

[श्रीरामचरितमानसके विशेष सन्दर्भमें]

(आचार्य डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०)

मन, वाणी और कर्मका 'ऐक्य' मानवका सर्वोत्कृष्ट गुण होनेके साथ-साथ उसकी श्रेष्ठता, सज्जनता, संतत्व एवं महानताका भी द्योतक है। जो मनुष्य उक्त 'ऐक्य'से विहीन होते हैं, वे दुरात्माकी कोटिमें प्रगण्य किये जाते हैं। इस सम्बन्धमें आचार्य चाणक्यका कथन है—

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्ये चान्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्॥

सद्ग्रन्थोंमें मन, वाणी और कर्मकी एकताका परिपालन करनेवाला व्यक्ति सन्त कोटिमें प्रगण्य मान्य है। भर्तृहरिकृत नीतिशतकके ७९वें श्लोकमें निर्दिष्ट है कि—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

भक्त सुकवि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस'के प्रायः प्रत्येक काण्डमें मन, वाणी और कर्मके ऐक्यको परमोपादेय एवं महत्त्वपूर्ण निरूपितकर मानवमात्रके लिये इसकी महत्ता प्रतिपादित की है।

मानवके लिये सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि आत्मज्ञान या परमात्माका सान्निध्य प्राप्त करना है। इसके लिये मन, कर्म और वचनसे भगवद्भक्ति एवं समर्पण परम आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदासजी इस विषयमें बार-बार उल्लेख करते हैं कि—

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

(रा०च०मा० १।१८।९, १।४७।३, १।१८६। छंद ३, १।२००।६, २।७५।६)

वस्तुतः मन, वाणी और कर्मके ऐक्यमें स्वार्थ अर्थात् परम शान्तिके साथ परमार्थ अर्थात् परमात्माकी प्रतीति सहज है। यथोल्लेख है कि—

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

(रा०च०मा० २।९३।६)

सुख, सम्पन्नता, शान्ति, निर्भयता, सुयश, सुमति और सम्पूर्ण कल्याण-प्राप्तिहेतु मन, कर्म और वचनका ऐक्य आवश्यक कहा गया है। यथा निर्दिष्ट है कि—

करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥

(रा०च०मा० २।१०७)

गोस्वामी तुलसीदासजी स्पष्ट कहते हैं कि मन, वाणी और कर्मके ऐक्यको जीवनमें उतारनेसे उस व्यक्तिमें स्वयं भगवान्‌का सामीप्य रहता है अर्थात् उस व्यक्तिके हृदयमें ईश्वर जाग्रत् होकर निवास करते हैं—

करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

(रा०च०मा० २।१३१।८)

मन, वचन और कर्मसे एक होनेवाला व्यक्ति सदा ही परमेश्वरका प्रिय होता है तथा परस्पर व्यवहारमें सभीसे समादृत भी होता है। यथा प्रदृष्ट है कि—

मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहत राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥

(रा०च०मा० २।१६८)

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजीने मन, वचन और कर्मकी एकताकी अनिवार्यता लोकहिताय सम्यक्‌रूपसे मान्य की है। उन्होंने राजा या शासन और प्रशासन-वर्गको इसके लिये चेतावनी देते हुए लिखा है कि राजाको मन, वचन और कर्मसे प्रजाका परिपालन करना चाहिये—

पालेहु प्रजहि करम मन बानी।

(रा०च०मा० २।१५२।४)

गोस्वामीजीने अपने इस महाकाव्यके अरण्यकाण्डमें भी मानवमात्रके लिये मन, वाणी और कर्मकी एकताके संधारणको परमेश्वरके सामीप्यका आधार निरूपित

किया है—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥
(रा०च०मा० ३। १६)

किष्किन्धाकाण्डमें भी गोस्वामीजीने कार्यकी सफलताके लिये मन, वाणी और कर्मकी एकताके महत्त्वको दर्शाते हुए स्पष्ट किया है कि—

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥
(रा०च०मा० ४। २३। ३)

श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें अनेक उदाहरण मन, वाणी और कर्मकी एकता-सम्बन्धी निर्दिष्ट हैं। उक्त त्रयीके ऐक्यका महत्त्व अपरिमित है, जो विश्वासकी सुदृढ़ नीवँपर सुस्थित और सुस्थिर है। सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये हनुमान्‌जीने इसीका प्रयोग किया—

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥
(रा०च०मा० ५। १३)

गोस्वामीजीने स्पष्ट किया है कि मन, वचन और कर्मके ऐक्यका अनुरागी कभी भी त्याज्य नहीं होता। इस सम्बन्धमें श्रीसीताजीके वचन हैं—

मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥
(रा०च०मा० ५। ३१। ४)

गोस्वामी तुलसीदासजीने यह भी स्पष्ट किया है कि मन, वाणी और कर्मसे प्रभुके आश्रित रहनेवाले व्यक्तिपर स्वप्नमें भी विपत्ति नहीं आ सकती—

बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥
(रा०च०मा० ५। ३२। २)

श्रीरामचरितमानसके लंकाकाण्डमें रावणके पक्षमें युद्ध करते हुए भी कुम्भकर्ण विभीषणको वाणी, कर्म और मनसे कपट छोड़कर श्रीरामजीका भजन करनेको कहता है—

बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ काल बस बीर॥

मन, कर्म और वचनकी एकता परम पुनीत कही गयी है। श्रीसीताजी कहती हैं—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मोकहुँ होउ श्रीखंड समाना॥
(रा०च०मा० ६। १०८। ७-८)

यहाँ मन, वाणी और कर्मके समत्वकी अलौकिक शक्ति प्रदृष्ट है, जिसके प्रभावसे अग्नि भी श्रीखण्डके समान शीतल हो गयी।

श्रीरामचरितमानसका उत्तरकाण्ड पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिका सुचिन्तन है। जिसके मूलमें मन, वाणी और कर्मकी एकता अपने सुदृढ़रूपसे स्थान बनाये हुए है; अथवा यों कहें, कि उक्त त्रयीका ऐक्य-परिपाक पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके रूपमें प्रत्यक्ष होता है।

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें मन, वचन और कर्मकी इस त्रयीकी महत्ता एवं उपादेयताका सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। यहाँ मन, कर्म और वचनसे धर्मके अनुपालनकी सुन्दर शिक्षा प्रदत्त है। यथा उल्लेख है—

मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥
(रा०च०मा० ७। २०। २)

यहाँ मन, वाणी और कर्मकी एकतानुसार निश्छल भक्ति अर्थात् सेवा करनेका सुखद उपदेश प्रदत्त है और कहा जा रहा है कि मनुष्यका सच्चा स्वार्थ यही है कि वह प्रभु श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम करे—

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
(रा०च०मा० ७। ९६। १)

निष्कर्ष यह है कि गोस्वामीजीने अपने महाकाव्य श्रीरामचरितमानसके माध्यमसे मनुष्यको सही मानव बननेका सूत्र—'मन, वाणी और कर्मका ऐक्य' प्रदान किया एवं सोदाहरण इसकी महनीय महत्तासे अवगत कराया। मन, वाणी और कर्मके ऐक्यसे विहीन व्यक्ति पशुताका प्रतीक है एवं इस त्रयीकी एकतासे सामान्यसे सामान्य व्यक्ति भी अपने तन-बल, आत्मबल तथा स्वाभिमानका सम्बन्ध करता हुआ शान्तिसद्‌गुणसहित सर्वसिद्धिको प्राप्त करनेमें सक्षम हुआ शाश्वत सुयशको प्राप्त होता है। अस्तु, मानवमात्रको मन, वाणी और कर्मकी एकताके प्रति सतत प्रयत्नशील रहकर इस मानव-जीवनके साफल्यके प्रति सजग रहना चाहिये।

कृष्णवल्लभा श्रीराधा

(श्रीमती शकुन्तलाजी अग्रवाल)

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परै स्यामु हरित दुति होइ॥

कृष्णप्रिया, कृष्णवल्लभा, राधा, रासेश्वरी, वृषभानुनन्दिनी आदि नामोंसे सम्बोधित की जानेवाली सबकी लाड़ली श्रीराधाको कृष्णकी आह्लादिनी शक्तिके रूपमें मान्यता प्राप्त है। कृष्णके जीवनमें अनेक स्त्रियाँ आयीं, उनकी रानियोंकी संख्या विशाल है, किंतु जो स्थान उनकी बालसखी राधाको प्राप्त हुआ, वह किसी औरको नहीं मिल पाया। राधा और कृष्ण दृश्य-जगत्‌में दो होते हुए भी एकप्राण हैं। दोनोंकी एक-दूसरेके बिना कल्पना भी दुष्कर है। कृष्णके संघर्षमय जीवनमें ऊर्जाका स्रोत श्रीराधा ही हैं। कृष्णसे प्रेम करना है तो राधाका आश्रय लेना ही होगा। दोनों एक-दूसरेके बिना अधूरे हैं। कृष्णके साथ यदि किसीका नाम जुड़ा है तो वह है श्रीराधाका नाम। भक्त कृष्णको 'राधारमण' कहकर पुकारते हैं। राधा कृष्णको आजीवन शक्ति प्रदान करतीं रहीं, भले ही वे उनके साथ न रह सकीं, पर परोक्षरूपसे उनकी प्रेरणास्रोत वे ही बनी रहीं।

प्रतिवर्ष भाद्रपदमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमी कृष्णजन्माष्टमीके रूपमें मनायी जाती है और ठीक पन्द्रह दिन बाद इसी मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी राधा-अष्टमीके रूपमें मनायी जाती है।

श्रीराधाजीका जन्म बरसाना नामक ग्राममें श्रीवृषभानुजीके यहाँ हुआ था। उनकी माताका नाम श्रीमती कीर्तिदा था। बरसाना ग्राम मथुरासे ५० कि०मी० दूर है और गोवर्धनपर्वतसे २१ कि०मी० दूर ब्रह्मा नामक पर्वतके ढलानवाले हिस्सेपर स्थित है। यहाँ श्रीलाड़िलीजीका विशाल भव्य मन्दिर बना हुआ है, जहाँ राधा-अष्टमीको उत्सवका आयोजन होता है। बरसानामें कई दिन पहले ही तरह-तरहके सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यक्रमोंका आयोजन प्रारम्भ हो जाता है और क्यों न हो, श्रीराधा वहाँकी अधिष्ठात्री देवी जो हैं। यदि कृष्ण भगवान् विष्णुके अवतार हैं तो श्रीराधा देवी लक्ष्मीजीकी अवतार हैं।

कुछ लोग मानते हैं कि राधाजीका जन्म उनके नानाके घर 'रावल' नामक ग्राममें हुआ था, कुछ दिन बाद वे अपने पिताके घर बरसाना आयी थीं। प्रथम शिशुके नानाके घर जन्म लेनेकी प्रथा अभी कहीं-कहीं प्रचलित है। निम्न पदसे यह सिद्ध होता है कि उनका जन्म 'रावल' नामक ग्राममें ही हुआ होगा—

रावल राधे प्रगट भई।
अब ब्रज बसि सुख लेहु सखी री प्रगटी कुँवरि रसमई॥

तथा

बाजत रावल माँझ बधाई।
श्रीवृषभानु गोपके प्रगटी श्रीराधा आनँद दाई।
घर-घर ते नर नारि मुदित मन सुनत चले उठि धाई।
ललित वचन लोचन भरि निरखत मानो रंक निधि पाई॥

राधाष्टमीके दिन पूरे व्रजक्षेत्रमें आनन्दोत्सवकी धूमधाम रहती है। राधाजीको पंचामृतसे अभिषेक कराके नवीन वस्त्राभूषण धारण कराये जाते हैं और विशेष भोगकी व्यवस्था की जाती है।

अष्टछापके कवियोंने जिस प्रकार कृष्ण-जन्मोत्सवपर विभिन्न पदोंकी रचना की है, उसी भाँति राधाके जन्मोत्सव और उनके पालनेमें झूलनेके प्रसंगको लेकर सुन्दर-सुन्दर पदोंकी रचना की है।

श्रीकृष्णदासजीका निम्न पद पठनीय है—

श्रीवृषभानु राय जु के आँगन, बाजत आजु बधाई।
भादों सुदि आठें उजियारी, आनन्द की निधि आई॥
रस की रासि रूप की सीमा, अँग अँग सुन्दरताई।
कोटि मदन वारों मुसकनि पर, मुख छवि बरनि न जाई॥
पूरन सुख पायो ब्रजवासी नैनन निरखि सिराई।
कृष्णदास स्वामिनि ब्रज प्रकटीं श्री गिरधर सुखदाई॥

उस समय मनके आनन्दको प्रकट करने और

बालकको आशीष देने तथा मंगलकामना देनेके रूपमें हल्दी मिले दहीको एक-दूसरेपर छिड़कनेकी प्रथा प्रचलित थी। राधाके जन्मपर भी वैसा ही आनन्द मनाया जा रहा है, जैसा कृष्ण-जन्मपर मनाया गया था। निम्न पदमें जन्मोत्सवका वर्णन बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है—

हेरी हे आज वृषभान के आनन्द भयो।
नाचत गोपी ग्वाल परस्पर, छिरकत हरद दह्यो॥
श्रवन सुनत गृह तें निकसीं सुन्दरी साज सिंगार।
हरद, दूब, अक्षत, दधि, कुमकुम चलीं भरि कंचन थार॥
बीना बेनु बखान बहुवरि बाजे पखावज ताल।
हँसत परस्पर प्रेम मुदित मन, गावत गीत रसाल॥
धन वृषभान गोपधन कीरति धन बरसानो गाम।
धन धन प्रकट भईं आनन्द निधि, धन्य श्रीराधा नाम॥
सिंधुसुता, गिरिसुता, सची, रती कोउ नाहिं समान।
धन धन 'गोविन्ददास' की स्वामिनी बृज की जीवनप्रान॥

इस पदमें श्रीगोविन्ददासजीने राधाजीको लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी और कामदेवकी पत्नी रतिसे भी अधिक सुन्दर माना है। राधा व्रजक्षेत्रकी जीवनरसदायिनी हैं। इन सभी देवियोंकी तुलनामें राधाका स्थान कहीं ऊँचा है। अलग रहकर भी वे जीवनपर्यन्त कृष्णकी आह्लादिनी बनी रहीं।

श्रीकृष्ण-अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः। वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः॥ १ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः। चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशङ्खाद्युदायुधः॥ २ ॥
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः। यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः॥ ३ ॥
पूतनाजीवितहरः शकटासुरभञ्जनः। नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः॥ ४ ॥
नवनीतविलिप्ताङ्गो नवनीतनटोऽनघः। नवनीतनवाहारो मुचुकुन्दप्रसादकः॥ ५ ॥
षोडशस्त्रीसहस्रेशस्त्रिभङ्गी मधुराकृतिः। शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो योगिनां पतिः॥ ६ ॥
वत्सवाटचरोऽनन्तो धेनुकासुरभञ्जनः। तृणीकृततृणावर्तो यमलार्जुनभञ्जनः॥ ७ ॥
उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः। गोपगोपीश्वरो योगी कोटिसूर्यसमप्रभः॥ ८ ॥
इलापतिः परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः। वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः॥ ९ ॥
गोवर्धनाचलोद्धर्ता गोपालः सर्वपालकः। अजो निरञ्जनः कामजनकः कञ्जलोचनः॥ १० ॥
मधुहा मधुरानाथो द्वारकानायको बली। वृन्दावनान्तसञ्चारी तुलसीदामभूषणः॥ ११ ॥
स्यमन्तकमणेर्हर्ता नरनारायणात्मकः। कुब्जाकृष्णाम्बरधरो मायी परमपूरुषः॥ १२ ॥
मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः। संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः॥ १३ ॥
अनादिब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः। शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलान्तकः॥ १४ ॥
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः। सत्यवाक्सत्यसङ्कल्पः सत्यभामारतो जयी॥ १५ ॥
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः। जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुनादविशारदः॥ १६ ॥
वृषभासुरविध्वंसी बाणासुरकरान्तकः। युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः॥ १७ ॥
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः। कालीयफणिमाणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजः॥ १८ ॥
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशकः। नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः॥ १९ ॥
जलक्रीडासमासक्तो गोपीवस्त्रापहारकः। पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः॥ २० ॥
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः। एवं श्रीकृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥ २१ ॥
कृष्णनामामृतं नाम परमानन्दकारकम्। अत्युपद्रवदोषघ्नं परमायुष्यवर्धनम्॥ २२ ॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

सफलताका सूत्र—धैर्य

(डॉ० श्रीगोपाल दामोदरजी फेगड़े)

मनुष्यको जीवनमें पग-पगपर आपदाओं एवं उलझनोंका सामना करना पड़ता है। हर संघर्षमें केवल शक्ति काम नहीं करती, उसके साथ-साथ धैर्य, साहस और संयमकी भी आवश्यकता होती है। धैर्यके बारेमें कहा जाता है ***'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥'*** अर्थात् यदि कोई विपत्ति आये तो धैर्य, धर्म, मित्र और नारी—इन चारकी परीक्षा हो जाती है। धैर्य मनुष्यका परम मित्र है; धैर्य धारण करना ही उसका परम धर्म है।

महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णने हताश, निराश एवं निस्तेज बने हुए अर्जुनको धैर्यकी घुट्टी पिलाकर युद्ध करनेको राजी किया। वास्तवमें अर्जुन शूर था, लेकिन माया और मोहके कारण शक्तिहीन बना था। भगवान् श्रीकृष्णने उसको धैर्यका मन्त्र पढ़ाकर उसकी सुप्तशक्तिको जाग्रत् किया। जैसे—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

(गीता २। ३)

'हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, यह तेरे लिये उचित नहीं है, हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो।'

मुमुक्षु साधकके लिये मनोनिग्रह उतना ही आवश्यक है, जितना प्रभुका स्मरण। मनोनिग्रह परमेश्वरकी आराधनाकी बुनियाद है, इच्छा हो तो रास्ता मिल जाता है, और रास्ता मिल जाये तो मंजिल मिल जाती है, लेकिन उसके लिये पक्का संकल्प, निश्चय और हिम्मत चाहिये। ***'हिम्मत-ए-मर्दा मदद-ए-खुदा'*** अर्थात् हिम्मतवालेकी ही ईश्वर मदद करते हैं। श्रीचक्रधर स्वामीजी कहते हैं। ***'पुरुष प्रयत्नी दैवाचे साह्य'*** (आचार १०२) अर्थात् प्रयास करनेवालेकी ही ईश्वर मदद करता है। दूसरे वचनमें श्रीचक्रधरस्वामीजी कहते हैं। ***'तू उमा ठाकलासिची पुरेः सिद्धी ते एयौनिचि नेइजैल की'*** (आचार मालिका ३०) अर्थात् तू किसी भी कार्यकी शुरुआत कर निमित्तमात्र हो जा, उसे सफल करनेका काम मैं करूँगा।

खडकुली नामक स्थानपर भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीजी अपने परम शिष्य श्रीनागदेव भट्टसे करते हुए बोले—'जीव कर्मचाण्डाल, कृतघ्न, प्रतारक, वंचक, मार्गद्रोही, गुरुद्रोही, ईश्वरद्रोही आदि दोषोंसे घिरा हुआ है। इसीलिये उसको परमेश्वरकी प्राप्ति दुर्लभ है। भट्टजीने इन शब्दोंको बड़े ध्यानपूर्वक सुना और एकान्तमें जाकर दुखी होकर रोने लगे। सर्वज्ञ श्रीचक्रधरस्वामी उनके पास जाकर बोले—***'हां गां रडिनलेयां काइ परमेश्वरु होइल एवं खडकेसी कपाव धेया पांजरि होए; तो जेया परी होआवा तेयाचि परी होईल कीं'*** (आचार० २०९) अर्थात् क्या रोनेसे परमेश्वर प्राप्त हो जायगा? क्या पत्थरपर सिरको टकराकर परमेश्वर प्राप्त हो सकता है? परमेश्वरप्राप्तिका ढंग अपनानेसे ही परमेश्वर प्राप्त होता है, उसके लिये रोना नहीं, धैर्य धारण करना चाहिये।

परमेश्वरप्राप्तिका मार्ग ऐसे आरामका नहीं। भगवान् श्रीचक्रधरस्वामीने अपनी आऊसा नामक शिष्याको कहा था ***'सुखसाधने देवो न पविजे नाए'*** (आचार ७९) अर्थात् सुखसाधनोंसे परमेश्वरकी प्राप्ति नहीं होती। श्रीचक्रधरस्वामीका बताया हुआ दुःख परमेश्वरकी अप्राप्तिका दुःख है न कि सांसारिक। परमेश्वरप्राप्तिके लिये साधकको अखण्ड निर्वेद, अनुताप, अनुसोच और आर्ति करनी चाहिये, अपने सर्वस्वका त्याग करना चाहिये। श्रीस्वामीजीद्वारा दिया हुआ मकोड़ेका दृष्टान्त द्रष्टव्य है। मकोड़ा अपने मुँहमें पकड़ा हुआ पदार्थ किसी भी हालतमें छोड़ता नहीं, अगर किसीने उसको अलग करनेकी कोशिश की तो वह अपना शरीर टूटने देता है लेकिन पकड़ा हुआ पदार्थ छोड़ता नहीं, उसी तरह भक्तको किसीभी हालतमें परमेश्वरप्राप्तिकी इच्छा, धैर्य एवं प्रयत्न छोड़ने नहीं चाहिये।

मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा है कि वह दुःखमें तो परमेश्वरको याद करता है, लेकिन सुखमें उसे भूल जाता है। जबतक मनुष्यका मन सांसारिक व्यामोहसे हटता नहीं, तबतक ईश्वरपर मन केन्द्रित करना असम्भव है।

श्रीचक्रधरस्वामी कहते हैं—*'जेतुल-जेतुला प्रपंची जडे तेतुल-तेतुला प्रपंचीं उजडे'* (आचारमालिका १६९) अर्थात् मनुष्य जैसे-जैसे सांसारिक सुखोंमें रमता जाता है, वैसे-वैसे परमेश्वरसे दूर होता जाता है और जैसे-जैसे ईश्वरपर मन केन्द्रित करता है, वैसे-वैसे संसारसे दूर जाता है। परमेश्वरका निरन्तर स्मरण होते रहनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेमी भक्त कुन्तीने दुःख माँगा था।

श्रीभगवान् कहते हैं—'मेरी जिसपर कृपा होती है, उस भक्तका वित्त मैं हरण करता हूँ। उसको पग-पगपर कष्ट और दुःखका अनुभव कराता हूँ।' इस सम्बन्धमें एक दन्तकथा है। एकबार भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन कहीं जा रहे थे। रास्तेमें उनको प्यास लगी। उन्होंने एक धनी आदमीके घर जाकर उनसे पानी माँगा, उसने उन्हें बगैर पानी दिये निकाल दिया। श्रीकृष्ण महाराजने उसके घरसे निकलते-निकलते कहा—'तेरी धनदौलत और बढ़े।' आगे चलकर वे एक गरीबकी झोपड़ीमें गये। उसके पास एक गायके सिवाय कुछ न था। उसने उन दोनोंका बड़े प्रेमसे स्वागत किया। पीनेको ठण्डा पानी दिया। ऊपरसे गायका दूध पिलाया। वहाँसे निकलते-निकलते श्रीकृष्णभगवान् बोले—'तेरी गाय मरे।' यह सुनकर अर्जुनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने श्रीकृष्ण महाराजसे पूछा—'महाराज! आपका न्याय कैसा विपरीत है?' श्रीकृष्ण महाराजने उसे समझाया। उस धनी व्यक्तिकी मुझमें भक्ति नहीं। उसकी भक्ति सिर्फ उसकी सम्पत्तिपर है, लेकिन उस गरीबकी मुझपर अनन्य भक्ति है। मेरे सिवाय उसकी थोड़ी-सी आसक्ति उसकी गायमें है। परमेश्वर-प्राप्तिमें उसकी गाय रोड़ा बनी हुई है। उसका परमेश्वर-प्राप्तिका रास्ता खुला होनेके हेतुसे मैंने उससे वैसा कहा।

'परमेश्वरकी अप्राप्ति' के दुःखकी दलदलमें ही मोक्षका कमल खिलता है। लेकिन दुःख सहन करनेके लिये मनोनिग्रह और इन्द्रियनिग्रहकी आवश्यकता होती है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर परमेश्वर-प्राप्तिके रास्तेमें रोड़ा बने रहते हैं। उनको हटानेके लिये श्रद्धा, विवेक, संयम, धैर्य और लगनकी आवश्यकता होती है। मन वायुकी तरह चंचल होता है, उसको काबूमें रखना महाकठिन काम है, सब आचारों और विचारोंकी लड़ाइयाँ मनकी रणभूमिपर ही खेली जाती हैं। मन नरकको स्वर्ग या स्वर्गको नरक भी कर सकता है। इसलिये कहा जाता है—'जिसने मनको जीता, उसने जगको जीता।' लेकिन बुद्ध या महावीर-जैसा कोई बिरला ही मनको जीत सकता है। मनोनिग्रह करनेके लिये कठोर साधना, लगातार प्रयत्न और वैराग्य अपनाना पड़ता है। उसके लिये कोई शॉर्टकट नहीं। धैर्यके बिना सब बातें असम्भव हैं। सन्त कबीर कहते हैं—

> धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
> माली सींचे सौ घड़ा रितु आये फल होय॥

'हे मन! धीरजसे काम ले। धीरे-धीरे सब कुछ होता है। माली पेड़-पौधोंको सैकड़ों घड़ा पानी डालता है। लेकिन उनपर फल मौसम आनेपर ही लगते हैं। कोई भी काम झटपट नहीं होता। अंगरेजीमें एक कहावत है—We need a drop of understanding, Barrel of love and Ocean of patience. अर्थात् चाहे संसारिक हो या पारमार्थिक कोई भी जीवनमें हमें एक बूँद समझकी, एक पीपा प्रेमकी और सागर-जितने धैर्यकी आवश्यकता होती है। धैर्य ही कामयाबीका निर्धारक है। जल्दबाजी हानिकारक होती है।

आजके जमानेमें मनुष्य अधीर बन गया है, वह हर कार्यका नतीजा झटपट चाहता है। यान्त्रिक साधनोंसे कुछ हदतक उसको कामयाबी भी मिल जाती है। लेकिन यंत्राधीन होनेके कारण उसकी प्रतिकार एवं सहनशक्ति घट गयी है। जरा-सी प्रतिकूल परिस्थिति आते ही वह धैर्य खो बैठता है। छोटी-छोटी बातोंसे अस्वस्थ और अशान्त हो जाता है। इसी कारणसे आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं। परिस्थितिके साथ संघर्ष करनेकी ताकत कम हो रही है। **'साहसे श्रीप्रतिवसति'** अर्थात् कामयाबी या धनलक्ष्मी साहसी और धैर्यवान् मनुष्यके साथ ही रहती है, इस सन्दर्भमें सुभाषितकार कहता है—

> उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
> षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

'उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छः गुण जिसके पास होते हैं, उसका भाग्य खुलता है।'

'अवधपुरी प्रभु आवत जानी'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

अयोध्यानगरीकी सीमाके बाहर हरे-भरे खेतों और सघन वृक्षावलियोंके मध्य एक कुटिया बनी है। नन्दिग्रामकी इस दिव्य कुटियामें प्रवेश करते ही एक गुफा दिखायी देती है। इस गुफाके आन्तरिक भागमें बने एक भव्य सिंहासनपर भगवान् श्रीरामकी चरण-पादुकाएँ शोभायमान हैं। विविध रंगोंके सुगन्धित पुष्पों और धूप-दीपकी सुगन्धसे समस्त वातावरण मनोहारी बना हुआ है। दीपककी धीमी-सी रोशनीमें उन चरण-पादुकाओंके सामने शीश झुकाये श्रीभरतलालजी उनकी पूजामें लीन हैं। नेत्रोंकी पलकोंने झुककर बाहरी संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। कोई नहीं जानता कि इस समय भाव-समाधिमें लीन नन्दिग्रामका यह तपस्वी प्रभु श्रीरामकी लीलाके दर्शन कर रहा है। उन्होंने अनुभव किया कि प्रभुने लंकाधिपति रावणको समाप्तकर विभीषणका राज्यभिषेककर उन्हें लंकाका राज्य सौंप दिया।

उधर प्रसन्नताके इन क्षणोंमें भी श्रीरामजीके मुखपर उदासीके चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे। इस अवसरपर प्रभुने विभीषणजीसे कहा—'हे लंकानरेश! आज हमारे चौदहवर्षीय वनवासका अन्तिम दिन है, इस समय मुझे मेरे भाई भरतकी चिन्ता सता रही है, वह अयोध्याके प्रवेशद्वारपर पागलोंकी भाँति खड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा, अब मुझे अविलम्ब अयोध्या पहुँचना ही होगा। प्रभुके संकल्पका सम्मान करते हुए कुबेरने अपना पुष्पक विमान उनकी सेवामें भेज दिया। प्रभु श्रीराम अपनी जीवनसहचरि श्रीजानकीजी और भाई लक्ष्मणके साथ उसपर आरूढ़ हो गये। प्रभुको विदा होते देख, विमानके समीप,

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥

सुग्रीव, नील, जाम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान्, विभीषणजीसहित मौन खड़े हैं, वे सब कातर दृष्टिसे भगवान्‌की ओर देख रहे हैं,

अतिसय प्रीति देखि रघुराइ। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥

प्रभु श्रीरामने अपने भक्तोंका अतिशय प्रेम देखकर सम्मानपूर्वक उन्हें अपने विमानपर स्थान दे दिया। अब प्रभुने मन-ही-मन गुरुचरणोंमें नमनकर विमानको उत्तर दिशाकी ओर चलनेका संकेत कर दिया। प्रभुका आदेश पाकर विमान अयोध्याकी ओर उड़ चला। मार्गमें श्रीरामजीने श्रीजानकीजीको अनेकों संत-महात्माओंके आश्रम तथा गंगा-यमुना और उनके तटोंपर बसे तीर्थ-स्थलोंके दर्शन कराये। विमान अपनी गतिसे उड़ता जा रहा था। प्रभुने देखा कि अब प्रयागकी सीमामें प्रवेश कर रहे हैं, उन्होंने विमानको त्रिवेणीतटपर रुकनेका आदेश दिया, विमान वहीं आकर नीचे उतर गया।

श्रीरामजीने श्रीजानकीजीको माँ गंगा और यमुनाजीके दर्शन करा, उनकी महिमाका गुणगान करते हुए उन्हें नमन किया। प्रभुने त्रिवेणीमें श्रद्धापूर्वक स्नान किया। तत्पश्चात्,

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु॥
तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ॥

प्रभु श्रीरामने हनुमान्‌जीसे कहा—'हे पवनपुत्र! तुम ब्राह्मणका वेश धारणकर अयोध्या चले जाओ, वहाँ भरतको हमारी कुशल-क्षेम और अयोध्या शीघ्र ही पहुँचनेकी सूचना देकर तुरंत ही लौट आना। प्रभुका आदेश पाकर हनुमान्‌जीने अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया और श्रीराम भारद्वाजजीके आश्रममें चले गये। उधर,

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

श्रीभरतजी प्रभु श्रीरामके विरह-सागरमें डूबे हुए थे, ऐसे समयमें नावका पर्याय बनकर हनुमान्‌जी नन्दिग्राम जा पहुँचे। उन्होंने धीरेसे कुटियाका द्वार खोल जैसे ही अन्दर प्रवेश किया, तो देखा कि कृशकाय शरीरके स्वामी, वल्कल

वस्त्र धारण किये, नन्दिग्रामके यशस्वी तपस्वी श्रीभरतजी प्रभु श्रीरामकी चरण-पादुकाओंपर शीश रखे अपने नेत्रोंसे बहती अश्रुधारामें भीगे हुए हैं। श्रीभरतजीके मुखसे निकले श्रीसीताराम नामका जप सुनकर हनुमान्‌जी खड़े होकर भावविभोर हो नृत्य करने लगे।

श्रीभरतजीने भावसमाधिसे बाहर आकर देखा, उनके निकट एक ब्राह्मण नृत्यमें लीन है। उन्होंने विनयपूर्वक उस ब्राह्मणको उपयुक्त आसनपर विराजमान करा यहाँ पधारनेका कारण पूछा, साथ ही अपना परिचय बतानेका आग्रह भी किया। ब्राह्मणने विनयपूर्वक उत्तर देते हुए कहा—'हे दशरथनन्दन! मैं प्रभु श्रीरामजीका चरणानुरागी सेवक हनुमान् हूँ। मैं प्रभुका सन्देश लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। हे भरतजी! आप,

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

जिनके आगमनकी प्रतीक्षामें रात-दिन पलक पाँवड़े बिछाये बैठे हैं, आप जिनके नामका निरन्तर जप करते हैं, वे प्रभु श्रीराम श्रीजानकीजी और भाई लक्ष्मणके साथ शीघ्र ही अयोध्या आ रहे हैं। यह शुभ समाचार सुन भरतजीने हनुमान्‌जीको अपने हृदयसे लगा लिया। इसी आवेशमें भरतजीने कहा—'हे देवतुल्य! आपके दर्शन और सन्देशसे मेरे सारे सन्ताप मिट गये, अब कृपाकर मुझे बताइये कि इस समय मेरे प्रभु कहाँ हैं, मातास्वरूपा श्रीजानकीजी और भाई लक्ष्मण सब सकुशल तो हैं?

श्रीहनुमान्‌जीने उन सबकी कुशलताका समाचार सुनाते हुए वन-प्रवाससे लंका-विजयकर लौटते हुए मुनि भारद्वाजजीके आश्रममें आनेतकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह बात बताकर हनुमान्‌जी कहने लगे—'हे भरतजी! अब मुझे यहाँसे प्रस्थान करनेकी अनुमति प्रदान करें; क्योंकि शीघ्र ही मुनिके आश्रममें पहुँचकर आपसे मिलनकी सूचना देनी है। प्रभु श्रीराम अब तुरंत ही अयोध्यामें प्रवेश करना चाहते हैं। यह सुनकर भरतजीने उन्हें प्रेमपूर्वक विदा कर दिया। अब,

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥
सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥

हर्षित होकर श्रीभरतजीने अयोध्या आकर सर्वप्रथम गुरुजीको तथा बादमें राजभवनमें प्रवेशकर तीनों माताओंको प्रभुके अयोध्या-आगमनका शुभ समाचार कह सुनाया। अयोध्याके हृदयसम्राट् श्रीराघवेन्द्रसरकारके आगमनका समाचार सुन विगत चौदह वर्षोंसे मरुस्थल-जैसे दृश्यमें परिवर्तित राजमहल तथा अयोध्यानगरीमें जैसे बसन्त-ऋतुने अपना समस्त वैभव स्थापित कर दिया हो।

तीनों राजमाताओं (कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी)-के साथ तीनों पुत्रवधुएँ (उर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति) प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षामें अपने हाथोंमें पुष्पोंकी पंखुड़ी और आरतीका थाल लिये भवनके प्रवेशद्वारपर खड़ी हो गयीं। उधर सारे नगरवासी अयोध्याकी साज-सज्जामें जुट गये। संत तुलसीदासने मानसमें लिखा है—

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥

हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥

प्रभु श्रीरामके आगमनका समाचार सुन पुरवासियोंने अयोध्याके प्रवेशद्वारसे राजभवनतकका मार्ग रंग-बिरंगे कोमल प्रजातिके पुष्पोंसे ढक दिया। सम्पूर्ण मार्ग मणि-मुक्ताओंसे जड़े विशाल द्वारोंसे सुशोभित कर दिया।

उधर श्रीभरतजीके साथ गुरु वसिष्ठ, समस्त परिजन और श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने राजाकी अगवानीके लिये नगरकी सीमापर पहुँच गये। इधर अयोध्याकी नारियाँ अपने भवनोंकी अटारियोंपर खड़ी होकर मंगल गान गाने लगीं।

पुष्पक नामक इस विमानने अयोध्याकी सीमामें प्रवेश किया। श्रीरामने अपने सेवकोंको सम्बोधितकर कहा—'हे मेरे प्रियजनो! अब हम कुछ ही पलोंमें वैकुण्ठसे भी करोड़ों गुना अधिक महिमामण्डित अयोध्याकी पावन धरतीपर उतरनेवाले हैं। प्रसन्नचित्त हो श्रीरामजी कहने लगे—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥

यह परम पवित्र पुरी ही मेरी जन्मभूमि है, इसकी उत्तर दिशामें बहनेवाली सरयू नदीमें स्नान करनेवाला जीव मेरा सामीप्य प्राप्त कर लेता है। प्रभु श्रीरामने नीचेकी ओर देखा, अनेकों पुरवासी उनकी अगवानीके लिये खड़े हैं। उन्होंने विमानको उनके समीप ही उतरनेका संकेत किया। प्रभुका आशय समझकर विमान भूमिपर उतर गया। विमानसे उतरकर श्रीरामने कहा—'हे पुष्पक! अब तुम अपने स्वामी कुबेरके पास लौट जाओ।' प्रभुके आज्ञानुसार पुष्पकने उड़ान भरी और जा पहुँचा कुबेरकी नगरीमें।

भगवान् श्रीराम श्रीजानकीजी भाई लक्ष्मण और अपने सेवकोंसहित नगरवासियोंके बीच आ गये। प्रभुने सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। श्रीजानकीजीको प्रणाम करते देख महर्षिने उन्हें अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद दिया। लक्ष्मणजी अब उनके चरणोंमें झुके तब उन्होंने स्नेहवश अपने हृदयसे लगा लिया। उसी एकत्रित समुदायके बीच भाई भरतको तपस्वी वेषमें खड़े देख प्रभु विचलित हो गये। भरतजी अपने आराध्य देवको सम्मुख खड़े देख उनके चरणोंमें लिपट गये। प्रभुने अपने दोनों हाथोंसे भाई भरतको ऊपर उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् भरतजीने मातास्वरूपा श्रीजानकीजीके चरणोंमें नमनकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। वहीं लक्ष्मणजीको खड़े देख अपने गले लगा लिया। इधर श्रीरामजीने एकान्तमें सिर झुकाकार खड़े भाई शत्रुघ्नको अपने पास बुलाकर स्नेहरूपी अमृतसे सिंचित कर दिया।

अब श्रीराम वहाँ उपस्थित जनसमूहका अभिवादन स्वीकार करते हुए जा पहुँचे राजभवनके मुख्य द्वारपर। उन्होंने देखा, वहाँ माताएँ अपने दोनों पुत्रों और पुत्र-वधूकी प्रतीक्षामें बेचैन अवस्थामें खड़ी हैं। श्रीरामजीने आगे बढ़कर उनके चरणोंमें नमन किया। श्रीजानकीजी और लक्ष्मणजीने माताओंके चरण-स्पर्शकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात् राजभवनमें नगरके विशिष्ट नागरिकों, राजसभाके मन्त्रियोंसे मिलनेमें पूरा दिन बीत गया। रात्रि परिवारके सदस्योंको वनके अनुभव सुनाते हुए बीत गयी।

प्रातःकालका समय हुआ। गुरुचरणोंमें प्रणाम करने श्रीरामजी उनके आश्रममें गये। महर्षि वसिष्ठजीने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'हे रघुकुलशिरोमणि! अब अयोध्याकी राजगद्दीको सुशोभित करनेका उपयुक्त अवसर आ गया है। तुम्हें राज्यका भार सौंपकर मैं अपने कर्तव्यकी इतिश्री करना चाहता हूँ। श्रीरामने मौन रहकर अपनी सहमति प्रकट कर दी। जब यह समाचार राजभवन और नगरमें पहुँचा, तब समस्त पुरवासी हर्षोल्लाससे नाचने-गाने लगे। गुरु वसिष्ठने शुभ घड़ी, शुभ दिन और शुभ लग्न देखकर समस्त राजपरिवार और पुरवासियोंकी उपस्थितिमें प्रभु श्रीराम और श्रीजानकीजीको राजसिंहासनपर विराजमान करा दिया। उपयुक्त समय जानकर प्रभुद्वारा प्रदान की गयी उनकी चरण-पादुकाओंको उन्हींके चरणोंमें धारण कराते हुए श्रीभरतजी कहने लगे—'हे रघुकुलभूषण! आपका राज्य आपके श्रीचरणोंमें समर्पित करते हुए मैं अपार आनन्दकी अनुभूति कर रहा हूँ। सूर्यकुलकी परम्पराके अनुसार ***'प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा'*** महर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामजीका तिलककर राज्याभिषेक किया। इस अवसरपर माताओंने आरती उतारकर अपना हर्ष व्यक्त किया। आकाशमें गन्धर्व मंगल गान गाने लगे, समूहमें आकर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देववधुओंने आकाशमण्डलसे पारिजातके पुष्पोंकी वर्षा की।

आज चौदह वर्षके पश्चात् भरत और शत्रुघ्नको भाई, माताओंको उनके पुत्र और पुत्रवधू श्रीजानकीजी, उर्मिलाको उनका पति तथा अयोध्याकी प्रजाको उनके राजा-रानी मिल गये।

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

✿ रामधारीजी महाराज बड़े शौचाचारसम्पन्न संत थे। शरीर अस्वस्थ हुआ तो अस्पताल ले जाये गये। स्थिति यह थी कि अपने हाथसे शौच आदिकी शुद्धि भी नहीं कर पाते थे, शिष्य-सेवक ही यह क्रिया सम्पन्न कराते, किंतु वे अपना हाथ मिट्टीसे पूर्ववत् धोनेका आग्रह रखते और कुल्ला इत्यादि भी पूर्ववत् करते। शिष्योंने पूछा कि जब शरीरमें इतनी अशक्तता आ गयी है, तब इस शौचाचारका आग्रह क्यों है ? उन्होंने कृपापूर्वक बतलाया कि जब शरीर चला जायगा, तब तुमलोग इस बातको याद करोगे और किसी भी कारणसे शौचाचारको शिथिल करनेका बहाना नहीं स्वीकार करोगे। वाणी और अपने चरित्रसे सद्गुरु शिष्योंको सन्मार्गपर अग्रसर करते रहते हैं।

✿ दो साधु वृन्दावनमें रहकर व्याकरण पढ़ते थे और ठाकुरजीकी मानसी सेवा किया करते थे। दोनों एक बार व्रजयात्राहेतु निकले। रास्तेमें उनमेंसे एक साधु रोने लगा कि ठाकुरजी बीमार हो गये हैं। कहते हैं—स्नान नहीं करूँगा। तुम ठंडे जलसे स्नान करा देते हो और तुम्हारा साथी गरम जलसे स्नान कराता है। सो मुझे सरद-गरम हो गयी है। अब स्नान नहीं करना है। यह कहकर वह साधु जोर-जोरसे रोने लगा कि अब मैं पूजा कैसे करूँ? उसका रुदन सुनकर उसका साथी साधु आकर पूछने लगा कि क्या हुआ ? क्यों रोते हो ? उसने सारी बात बतायी। सुनकर वह साथी साधु और जोरसे रोने लगा। पहले साधुने कहा कि तुम क्यों रोते हो, तुम्हारे ठाकुरजी तो स्वस्थ हैं ? तुम अपनी पूजा करो। वह रोते हुए बोला—मैं गरम पानीसे स्नान कराता हूँ तो भी मुझसे आजतक नहीं बोले, तुमसे बात की। भावजगत्की बात ही निराली होती है।

✿ बाबा रघुनाथदासजी बड़े साधक संत थे। नित्य मानसी पूजा खूब आनन्द लेकर करते थे। एक दिन मानसी पूजामें ही ठाकुरजीसे पूछा—'क्या आरोगोगे ?' ठाकुरजीने खीर खानेकी इच्छा बतायी। बाबाने मानसिक रूपसे कामधेनुके औटाये हुए दूधमें खूब मेवा-केशर देकर स्वादिष्ट खीर बनाकर परोसी। ठाकुरजीने खीरकी बहुत बड़ाई करी और कहा कि चखकर देखो। ऐसा कहकर खीरका कटोरा बाबाके मुखसे लगा दिया और भावजगत्की खीरका प्रसाद बाबाने भी प्रेमपूर्वक भरपेट ग्रहण किया। दिनमें बाबाको बुखार आ गया। वैद्यजी बुलाये गये। उन्होंने नाड़ी देखी और कहा कि इन्होंने गरिष्ठ खीर खायी है। लोग बोले बाबा तो केवल छाछका आहार लेते हैं। वैद्यजी जब अपनी बातपर दृढ़ रहे, तब बाबाने स्वीकार किया कि वैद्यजी ठीक कहते हैं। प्रगाढ़ भावकी मानसी खीरका प्रभाव देहपर भी हुआ।

✿ एक प्रेत वीरान जंगलमें था, जिसके कारण पासके गाँववाले उस स्थानको नटबाबाका इलाका कहा करते थे। कोई उस ओर दिनमें भी चला जाय तो पागल हो जाय। एक पण्डितजी उस गाँवमें कथा कहने आये और शाम हो जानेके कारण छोटा रास्ता जानकर जंगलवाले मार्गसे जाने लगे। लोगोंने रोका और प्रेतकी बात बतायी। पण्डितजीने कहा कि मैंने किसीका अशुभ चिन्तन नहीं किया है, प्रेत मुझे क्यों सतायेगा ? ऐसा कहकर वे उसी रास्तेपर चल पड़े। मार्गमें प्रेतने कई प्रकारसे उन्हें डरानेका प्रयत्न किया, किंतु पण्डितजीपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तब प्रेत सामने आकर खड़ा हो गया। पण्डितजी बोले कि हम किसीका बुरा नहीं सोचते, तुम्हारा भी बुरा नहीं सोचेंगे, फिर हमें क्यों डराते हो ? प्रेत शान्त हो गया और बोला, 'आपकी क्या सेवा करूँ ?' पण्डितजीने वहाँ सीताफलके अनेक वृक्ष देखकर कहा कि तुम्हारा मन है तो थोड़े सीताफल दे दो। उस निर्जन प्रदेशमें कोई फल तोड़ता नहीं था, अतः प्रेतने पेड़ हिलाकर बहुत सारे सीताफल गिरा दिये और पूछा कि मैं इन्हें आपके गाँव पहुँचा दूँ ? पण्डितजीने मना किया और स्वयं ही यथेच्छ फल लेकर आगे चल पड़े। यह प्राणीमात्रपर दयाका भाव रखनेका परिणाम है। कालक्रमसे उनके गाँवके पास रेल दुर्घटना हो गयी और अनेक लोग मर गये। पण्डितजीने कहा कि आज गाँवमें किसी घरमें रसोई नहीं बननी चाहिये। सभी लोग मृतात्माओंकी शान्तिहेतु यथासाध्य कीर्तन-भजन करें। ऐसा ही हुआ। संतोंका प्राणीमात्रपर दयाभाव रखनेका यह उत्तम उदाहरण है।—'प्रेम'

भगवन्नाम-जपका विज्ञान

(श्रद्धेय स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी महाराज)

जितेन्द्रियश्चात्मरतो बुधोऽसकृत्
सुनिश्चितं नाम हरेरनुत्तमम्।
अपारसंसारनिवारणक्षमं
समुच्चरेद् वैदिकमाचरन् सदा॥

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ११२)

अर्थात् जितेन्द्रिय और परमात्मामें प्रीति करनेवाला बुद्धिमान् व्यक्ति निर्धारित वैदिक कर्मोंका सदा आचरण करते हुए घोर संसारबन्धनका निवारण करनेमें समर्थ भगवान् के सर्वश्रेष्ठ नामका बारम्बार उच्चारण करे।

भगवन्नामका उच्चारण—बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह अपनी अन्तर और बाह्य सभी इन्द्रियोंको निग्रहीत करनेका प्रयास करे, इसके लिये परमात्मामें प्रीति होना अत्यन्त आवश्यक है। संसारी जीवकी विषयोंमें सहज प्रीति होती है। पूर्व विषयसे उत्कृष्ट विषयमें प्रीति होनेपर पूर्व विषयमें प्रीति समाप्त हो जाती है, यह सभीका अनुभूत विषय है। सर्वोत्कृष्ट वस्तु परमात्मा ही है, अतः उसमें जैसे-जैसे प्रीति होती जायगी, वैसे-वैसे विषयोंसे विरति होती चली जायगी, इस प्रकार आराध्य प्रभुमें प्रीति होनेपर विषयोंमें प्रीति समाप्त हो जायगी। कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और भक्तियोगी—इन सभीके लिये उक्त योगोंके अंगरूपसे नित्य-नैमित्तिक कर्म निर्धारित हैं, वे आजीवन अनुष्ठेय हैं। **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'**— ऐसा ईशावास्य श्रुति कहती है। सभी साधनोंकी सफलताका मूल है—भगवन्नामजप, इसलिये उसका निरन्तर उच्चारण करना चाहिये। उच्चारणके बिना मानस जप करनेपर आरम्भिक साधकका मन भटक जाता है और मन भगवन्नामसे हट जाता है, इसलिये ग्रन्थकारने नामका उच्चारण करनेको कहा है। अभ्यासमें परिपक्वता होनेपर मानस जप भी किया जा सकता है। नामजप सभी साधनोंका उपकारक होनेके साथ ही भक्तियोगका अन्तरंग साधन है।

भगवन्नाम-जपमें श्रद्धा, प्रीति और तन्मयताकी आवश्यकता—भगवान्‌का नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है, कलियुगमें नामको छोड़कर दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पु०पू०ख० ४१। १५)

श्रीभगवान् कहते हैं—निरन्तर मुझमें मन लगाये हुए, प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले उन भक्तोंको मैं तत्त्वज्ञान देता हूँ, जिसमें वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(रा०च०मा० १। २०। ८, १। २१। ३-४, ८, १। ११८। ४)

इन शास्त्रवचनोंसे यह अति स्पष्ट होता है कि योग, ध्यान आदि साधनोंके बाधक इस कराल कलिकालमें साधकके लिये सकलसिद्धि-प्रसाधक भगवन्नाम-जप ही है। **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्'** ***'सादर सुमिरन जे नर करहीं', 'साधक नाम जपहिं लय लाएँ'***—इन वाक्योंमें 'प्रीति' 'लय' 'सादर' ये शब्द यह सिद्ध कर रहे हैं कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मन लगाकर नाम-जप करनेपर ही सिद्धिकी प्राप्ति होती है, उसके बिना नामजपसे नहीं होती। योगसूत्र **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** (योगसूत्र १। २८)-में भी स्पष्ट कहा है कि ईश्वरके नाम-जपके साथ उसके अर्थकी भावना भी करनी चाहिये।

नामापराध

शंका—भगवन्नाम-जपके साथ 'श्रद्धा-प्रीतिपूर्वक मन लगाकर करना चाहिये' यह शर्त लगाना ठीक नहीं; क्योंकि शास्त्रोंमें किसी प्रकार भी लिया गया भगवन्नाम सम्पूर्ण पापोंका नाशक तथा यमयातनासे रक्षक और कल्याणकारक माना गया है। भागवतमें कहा है कि

संकेत, परिहास, गाने तथा पुकारनेमें भी वैकुण्ठनाथका नाम-ग्रहण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है। गिरते, फिसलते, टूटते, काटते, तपते, चोट खाते हुए पुरुषद्वारा परवश होकर 'हरि' ऐसा कहनेपर भी वह यम-यातना नहीं भोगता—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १४-१५)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघ दहहीं॥

(रा०च०मा० १। २७। १, ११८। ३)

यदि कहा जाय कि ये वचन नामजपमें प्रवृत्ति करानेके लिये अर्थवादमात्र हैं, इनका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं है तो यह कथन ठीक नहीं; क्योंकि नाम-जपके फलको अर्थवाद मानना नाम-अपराध माना गया है। १. सन्तोंकी निन्दा करना। २. नाम-माहात्म्यकी कथाओंको असत् पुरुषोंमें कहना। ३. भगवान् विष्णु और शंकरमें भेदबुद्धि करना। ४. गुरुके वचनोंमें अश्रद्धा करना। ५. अपौरुषेय वेदके वचनोंमें अश्रद्धा करना। ६. वेदमूलक अन्य शास्त्रके वचनोंमें अश्रद्धा करना। ७. नामजपके फलमें अर्थवादका भ्रम होना। ८. मेरे पास भगवन्नाम है, ऐसा अभिमान करके निषिद्ध कर्मका आचरण करना। ९. मेरे पास भगवन्नाम है, ऐसा अभिमान करके विहित कर्मका त्याग करना। १०. नाम-जपको दूसरे धर्मोंके समान मानना—ये दस नामापराध भगवान् विष्णु और शंकरके नामजपमें माने गये हैं—

सन्निन्दाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश॥

समाधान—कुछ विद्वानोंका कहना है कि पूर्वोक्त भागवतके श्लोकोंमें ही, किसी प्रकार भी लिये गये भगवन्नामको केवल पापनाशक तथा नरकयातना-रक्षक ही बताया है, कल्याणकारक नहीं। भागवतमें अजामिलके प्रसंगमें पूर्वोक्त श्लोक आये हैं। पुत्रके व्याजसे लिये गये भगवन्नामद्वारा अजामिलके भी केवल पापोंका ही नाश हुआ, कल्याण तो हरिद्वारमें जाकर साधना करनेपर ही हुआ था। भागवतमें ही स्पष्ट लिखा है कि पीछेके सभी बन्धनोंसे मुक्त हुआ अजामिल हरिद्वार गया, उस देवसदन तीर्थमें उसने योगका आश्रय लिया—

गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः॥
स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः।

(श्रीमद्भागवत ६। २। ३९-४०)

इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धा-प्रेमरहित किसी भी प्रकार लिया गया भगवन्नाम केवल पापनाशक तथा यमयातनासे रक्षक ही होता है और श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयतासे लिया गया भगवन्नाम कल्याणकारी होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो शास्त्रोंमें जो श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयताका कथन है, उसकी सार्थकता सिद्ध न होगी तथा शास्त्रवचनोंमें विरोध उपस्थित होगा। अतः कुभावसे लिये गये नामको भी कल्याणकारी कहनेवाले शास्त्रवचनोंकी संगति यही लगानी चाहिये कि प्रथम तो उससे उनके पापका नाश ही होता है, जिससे शुद्ध अन्तःकरण होनेपर वे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामजप करने लग जाते हैं और उनका भविष्यमें कल्याण हो जाता है। ऐसा ही अजामिलका हुआ था।

अन्य विद्वानोंका कहना है कि कुभाव आदिसे एक बार भी लिया गया भगवन्नाम पूर्वके सभी पापोंका नाश कर देता है, यदि व्यक्ति फिर पाप न करे तो उसका कल्याण हो जाता है। पुनः-पुनः पाप करनेपर पुनः-पुनः लिया गया नाम पापका ही नाश करता रहेगा, उससे कल्याण नहीं होगा। अन्य विद्वानोंका कहना है कि मरते समय कुभाव आदिसे भी लिया गया नाम पापनाश तथा कल्याण दोनों कर देता है; क्योंकि नामने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण पापोंका नाश कर दिया, नया पाप करे, ऐसा अवसर ही नहीं आया, अतः उसका कल्याण हो जाता है। अन्य विद्वानोंका कहना है कि कुभाव आदिसे लिया गया नाम सामान्यरूपसे पापका नाश करता है और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक लिया गया नाम विशेषरूपसे पाप-नाश करता है। यदि आगे पाप न किया जाय और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामजप करता रहे तो पाप-वासनाका भी नाश होता है। इसके बाद

भगवद्भक्तिका उदय होता है, तब कल्याण होता है।

कुछ नामजप करनेवाले सच्चे साधकोंके सम्मुख एक प्रसिद्ध सन्तके साथ उक्त विद्वानोंके मतोंपर विस्तारपूर्वक विचार कर रहा था। उनमेंसे सन्तस्वभावके एक सच्चे साधकने कहा—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
बारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

(रा०च०मा० १।२७।१, २।२१६।४)

जो मनुष्य आश्चर्य, भय, शोक और घायल होने आदिकी स्थितिमें किसी भी बहाने मेरा नाम-स्मरण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है—

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम यः।
व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्॥

(ब्रह्मपुराण)

इन शास्त्रवचनोंमें कुभाव आदिसे एक बार भी लिया गया नाम पाप-नाशक ही नहीं, अपितु परमगति देनेवाला बताया गया है। भगवन्नामकी इस महिमामें जरा भी सन्देह करना या जरा भी संकुचित अर्थ करना तो नाममहिमामें अर्थवादकी कल्पना करना ही कहा जायगा। यह तो नामापराध ही होगा; क्योंकि दस नामापराधोंमें एक नामापराध है—'**नाम्न्यर्थवादभ्रमः।**'

इससे तो नरकमें ही जाना पड़ेगा। जो मनुष्य भगवान्‌के नाममें अर्थवादकी सम्भावना करता है, वह मनुष्योंमें महापापी है। निश्चय ही वह नरकमें पड़ता है—

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम्॥

उनके इन वचनोंको सुनकर उनकी भगवन्नामनिष्ठासे भीतरसे प्रसन्न, बाहरसे गम्भीर मुद्रापन्न होकर मैंने पूछा कि आपको बीस वर्षोंसे मैं भलीभाँति जानता हूँ। इन बीस वर्षोंमें आपने एक बार नहीं, किंतु करोड़ों बार, कुभावसे नहीं, सद्भावसे भगवन्नाम लिया है। आप सत्य-सत्य बताइये कि क्या आपका कल्याण हो गया? दूसरेका कल्याण करनेमें आप समर्थ हो गये। मेरा भी कल्याण कर सकते हैं तो करके दिखाइये। मेरे इस प्रकार कहनेपर उन्होंने स्वीकार किया कि यह सत्य है कि बीस वर्षोंमें मैंने करोड़ों बार सद्भावसे नामजप किया है, तो भी दूसरोंको तारनेकी बात तो बहुत दूर रही, मैं स्वयं भी अभीतक नहीं तर पाया। इसका एकमात्र कारण यह है कि जितनी श्रद्धा तथा तन्मयतासे नामजप करना चाहिये, वैसा मैं नहीं कर पाया। सच्चे सरल भावसे कहे सदुत्तरको सुनकर प्रसन्न-मुद्रापन्न होकर मैंने कहा कि इस प्रकारका सदुत्तर देकर आपने अपने मुखारविन्दसे ही यह स्वीकार कर लिया कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक तन्मयतासे लिया गया नाम ही कल्याणकारी होता है। मेरे युक्तियुक्त वचनको सुनकर तथा अपनी अनुभूतिसे समर्थन पाकर मौन-आलम्बनद्वारा उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया।

पूर्वोक्त दस नामापराधोंमें नामको अन्य धर्मकार्योंके समान मानना भी एक अपराध माना है—'**धर्मान्तरैः साम्यम्।**' इसपर विचार करनेसे भी यही अर्थ निकलता है कि नामपर सर्वोपरि '**श्रद्धा**' होनी चाहिये। इससे तो यही सिद्ध होता है कि नामजपमें '**श्रद्धा**' की शर्त लगाना या आवश्यकता बताना नामापराध नहीं, किंतु श्रद्धाकी शर्त न लगाना या आवश्यकता न बताना ही नामापराध है। श्रद्धापूर्वक नामजप करनेवाले भी जो साधक खान-पान आदिके शास्त्रीय विधि-निषेधका पालन नहीं करते और ऐसा मानते हैं कि इनका पालन करना तो नामको सर्वसमर्थ माननेमें सन्देह करना है, नाममहिमाको घटाना है, उन साधकोंसे प्रार्थना है कि '**नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो**' अर्थात् नामके बलपर शास्त्रनिषिद्ध आचरण करना और शास्त्रविहित आचरणका त्याग करना—इन दो नामापराधोंपर ध्यान दें। इन दोनोंपर ध्यान देनेसे स्पष्ट हो जाता है कि नाम-जपको कल्याणका मुख्य साधन मानना तो ठीक है, किंतु अन्य साधनोंकी अवहेलना करना ठीक नहीं। अन्य साधनोंकी अवहेलनासे नामापराध बनकर नाम-महिमा घटती है, उनका आदर करनेसे नहीं। आदरणीय विश्वनाथ चक्रवर्ती, गिरिधरलाल शर्मा आदि विद्वानोंने भागवत (६।२)-में नामापराधोंपर विस्तारसे विचार किया है, जिज्ञासुओंको उसे अवश्य देखना चाहिये। [क्रमशः]

प्रेमी भक्तके पाँच महाव्रत

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

प्रेमी भक्तकी महिमा—श्रीमद्भागवत्में भगवान्ने अपने श्रीमुखसे अपने प्रेमी भक्तोंकी महिमा बतायी है। उनकी वाणी है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १५)

अर्थात् हे उद्धव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, शंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।

अपने भक्तकी महिमा बताते हुए भगवान् कहते हैं—मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है—

……मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

प्रेमा भक्तिकी महिमा—श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान्की वाणी है—

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥
न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १९—२१)

अर्थात् हे उद्धव! जैसे धधकती हुई आग लकड़ियोंके बड़े ढेरको भी जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी समस्त पाप-राशिको पूर्णतया जला डालती है। हे उद्धव! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं, जितनी दिनों-दिन बढ़नेवाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति। मैं संतोंका प्रियतम आत्मा हूँ, मैं अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्तिसे ही पकड़में आता हूँ। मुझे प्राप्त करनेका यह एक ही उपाय है। मेरी अनन्य भक्ति उन लोगोंको भी पवित्र कर देती है, जो जन्मसे ही चाण्डाल हैं।

प्रेमकी महिमा—भगवत्प्रेमकी महिमा अपार है, असीम है, अनन्त है, श्रीरामचरितमानसके विविध प्रसंगोंमें प्रेमकी महिमाका अद्भुत वर्णन आया है।

(१) सर्वप्रिय—भगवान्को एक चीज ही सबसे ज्यादा प्यारी लगती है और वह है प्रेम।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

(रा०च०मा० २। १३६। १)

अर्थात् श्रीरामजीको केवल प्रेम प्यारा है, जो जानना चाहता है, वह (प्रेम देकर) जान ले।

(२) प्रकट होना—इस चराचर संसारमें विभिन्न रूपोंमें केवल भगवान् हैं, वे कण-कणमें हैं। जो उनको प्रेम देता है, उसको वे अपने दर्शन दे देते हैं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(रा०च०मा० १। १८५। ५)

अर्थात् मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

(३) बिना प्रेम नहीं मिलते—आप जो भी साधना करते हैं, वह बहुत अच्छी है, करणीय है, लेकिन उसमें प्रेम नहीं है तो भगवान् नहीं मिलेंगे।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥

(रा०च०मा० ७। ६२। १)

अर्थात् बिना प्रेमके केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादिके करनेसे श्रीरघुनाथजी नहीं मिलते।

(४) सर्वोत्तम कृपा—भगवान् प्रेमसे जैसी जबरदस्त कृपा करते हैं, वैसी अन्य साधनाओंसे नहीं करते हैं।

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥

(रा०च०मा० ६। ११७)

अर्थात् हे उमा! अनेकों प्रकारके योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करनेपर भी श्रीरामजी वैसी

कृपा नहीं करते, जैसी अनन्य प्रेम होनेपर करते हैं।

(५) भगवान्‌का भोजन—प्रेमीके हाथका भोजन ही भगवान्‌का महाप्रसाद है, चाहे भोजन-सामग्री कैसी ही हो। शबरीके कन्दमूल-फल और विदुरानीके केलेके छिलके खाकर भगवान् भाव-विभोर हो गये। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान्‌की वाणी है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(९।२६)

अर्थात् जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य एवं अनायास प्राप्त वस्तु)-को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस मुझमें तल्लीन हुए अन्तःकरणवाले भक्तके द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट)-को मैं खा लेता हूँ, अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

पाँच महाव्रत—यदि पाँच बातें आपके आचरणमें आ जायँ तो आप प्रभुके महान् प्रेमी भक्त बन जायँगे। ये पाँच बातें प्रेमी भक्तके पाँच महाव्रत हैं। इनका विवेचन इस प्रकार है—

(१) कुछ नहीं रखना—प्रेमीका पहला महाव्रत है—मैं अपने पास 'मेरा' मानकर कुछ भी, एक सूई भी नहीं रखूँगा, लेकिन अपने प्रभुका मानकर वे सब रखूँगा, जो प्रभुने मुझे दिया है और भविष्यमें देंगे। मेरा माननेका अर्थ है—मनमें यह भाव रखना कि ये सब चीजें प्रभुकी हैं, प्रभु ही इनके मालिक हैं, इनपर उनका ही अधिकार चलता है, वे जबतक चाहेंगे, तबतक ये चीजें मेरे पास रहेंगी, वे अपनी चीजें किसी भी समय मुझसे वापस ले सकते हैं, उन्होंने एक विशेष उद्देश्यसे कुछ समयके लिये अपनी चीजें मुझे सौंपी हैं। प्रेमी अपने पास लगभग उन सभी चीजोंको रखता है, जो एक सामान्य मनुष्य रखता है, जैसे-स्थूल, सूक्ष्म, कारण—तीनों शरीर, सामर्थ्य, योग्यता; आँखें, नाक, कान, जीभ, हाथ-पैर आदि इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, विवेक, अहम्, स्वयं, पति, पत्नी, संतान, माता, पिता, भाई, बहन आदि परिवारीजन, सामान, सम्पत्ति आदि। लेकिन दोनोंकी भावनामें भारी अन्तर होता है। प्रेमी इनको प्रभुकी मानता है और सामान्य मानव 'मेरी' मानता है। मेरी मानना मोह है, प्रभुकी मानना प्रेम है। मोह सब प्रकारके दुःखोंकी जड़ है, प्रेम आनन्दका सागर है, श्रीरामचरितमानसमें आया है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

(रा०च०मा० ७।१२१।२९)

अर्थात् सब रोगोंकी जड़ मोह है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुतसे शूल उत्पन्न होते हैं। यदि आपको इन चीजोंके वियोगका भय लगता है और वियोग होनेपर दुःख होता है तो इनमें आपका मोह है। न वियोगका भय है, न वियोगमें दुःख है, वियोगमें प्रसन्नता है तो प्रेम है।

(२) अपने लिये नहीं रखना—प्रेमीका दूसरा महाव्रत है—मैं अपने पास अपने लिये, कुछ भी, एक सूई भी नहीं रखूँगा। लेकिन अपने प्रभुके लिये वह सब रखूँगा, जो प्रभु मुझे देंगे। अपने लियेका अर्थ है—इस भावनासे सब चीजोंको रखना कि ये चीजें मेरे काम आयेंगी, इनसे मुझे वह मिलेगा, जो मैं चाहता हूँ। वह इस बातको भली-भाँति जानता है कि इस संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति नहीं है, जिसके मिल जानेपर मेरा दुःख मिट जाय, मुझे परम शान्ति, जीवन्मुक्ति, भगवद्भक्ति मिल जाय, मुझे भगवान्‌के दर्शन हो जायँ। इसलिये वह कोई भी सांसारिक चीज अपने लिये नहीं रखता है। किसके लिये रखता है, अपने प्रभुके लिये। प्रभुके लिये रखनेका अर्थ है—इस भावनासे सब चीजें रखना कि इनको रखनेसे मेरे प्रभुको प्रसन्नता होती है और मैं इन सब चीजोंसे अपने प्रभुको प्रेम देकर उनका प्रेमी भक्त बनूँगा। वे चीजें तो प्रेम देनेकी सामग्री हैं।

(३) कुछ नहीं करना—प्रेमी भक्तका तीसरा व्रत है मैं अपने जीवनमें कभी भी अपने लिये कुछ भी नहीं करूँगा, कुछ नहीं सोचूँगा। अपने लिये सोचने, करनेका अर्थ है—इस भावनासे सोचना-करना कि ऐसा करनेसे मेरी कामनाएँ पूरी होंगी, मुझे सुख मिलेगा; ऐसा करनेसे मुझे शान्ति मिलेगी, ऐसा करनेसे मुझे दुःखोंसे मुक्ति मिलेगी, मैं जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त हो जाऊँगा; मुझे भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे आदि। जो अपने लिये कुछ भी करता है, वह भोगी है। सांसारिक कामनाओंकी

पूर्तिके लिये करनेवाला भोगी या स्वार्थी है। भोगी सदैव रोगी, दुखी एवं चिन्तित रहेगा। अपनी शान्ति, अपनी मुक्तिके लिये करनेवाला भोगीकी तुलनामें श्रेष्ठ है। भगवान्‌के दर्शनके लिये करनेवाला उससे भी ज्यादा श्रेष्ठ है, लेकिन वह प्रेमी भक्तकी तुलनामें कम श्रेष्ठ है। सबसे महान् होता है प्रेमी भक्त।

(४) केवल प्रभुके लिये करना—प्रेमीका चौथा व्रत है—'मैं जो कुछ करूँगा और जो कुछ सोचूँगा, वह केवल अपने प्रभुके लिये ही करूँगा, प्रभुके लिये ही सोचूँगा। प्रभुके लिये करने एवं सोचनेका अर्थ है—प्रभुको प्रसन्नता देनेके लिये करना एवं सोचना।'

कैसे देनी है प्रसन्नता—इसकी विवेचना इस प्रकार है—

(क) विविध कार्य—प्रातःकाल उठनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक आप अनेक प्रकारके कार्य करते हैं, जैसे—शौच, स्नान, व्यायाम, अपनी नियमित पूजा, नाश्ता, भोजन, गृहकार्य, नौकरी, व्यापार, परिवारजनोंकी देख-भाल, सेवा, सामाजिक कार्य, राजनैतिक एवं धार्मिक कार्य आदि।

(ख) दो उद्देश्य—किसी भी कार्यको करनेके दो उद्देश्य रह सकते हैं—अपना सुख और प्रभुका सुख या प्रसन्नता। यदि आप सोचते हैं, कि इस कार्यको करनेसे मुझे सुख मिलेगा तो आप भोगी या स्वार्थी हैं। आप सोचते हैं इस कार्यको करनेसे मेरे प्रभुको प्रसन्नता मिलेगी तो आप प्रेमी भक्त हैं। प्रभुकी प्रसन्नता ही प्रेमी भक्तकी प्रसन्नता है।

(ग) प्रभु कहाँ हैं—प्रभु दो जगह हैं—पहली आपके मन्दिर या पूजाघरमें। वह मन्दिर आपके घरमें हो, चाहे घरके बाहर। आप भी इस बातको मानते हैं कि मन्दिरमें मेरे प्रभु हैं, इसलिये आप मन्दिरमें अपनी नियमित पूजा करते हैं। दूसरी मन्दिरके बाहर। मन्दिरके बाहरवाले भगवान् कौन हैं? उनका क्या नाम है? कैसा रूप है? बाहरवाले भगवान्‌का एक ही नाम है—जगत् या संसार। आपका शरीर, परिवारके सदस्य, सम्बन्धी, मित्र, समाज और संसारके सभी मनुष्य, सभी प्राणी आदि भगवान् ही हैं। सभी कार्य भगवान्‌के ही कार्य हैं।

(घ) ऐसे दीजिये मन्दिरमें प्रेम—आप अपने मन्दिरमें बैठकर निम्न कार्योंको करते हैं—भगवान्‌का श्रृंगार, उनके दर्शन, पूजा, पाठ, जप, आरती, ध्यान, भजन, कीर्तन, नृत्य, भगवान्‌को भोग लगाना आदि। ये सभी कार्य इस भावनासे करें कि इनसे प्रभुको प्रसन्नता मिलेगी, तो यह भगवान्‌को प्रेम देना हो गया। यदि आप इनको अपनी सांसारिक कामनाओंकी पूर्तिके उद्देश्यसे करेंगे, इस भावनासे करेंगे कि ऐसा करनेसे मेरे जीवनमें अनुकूलता बनी रहेगी, प्रतिकूलता नहीं आयेगी। तो यह हो जायगा स्वार्थ। यही पूजामें सबसे बड़ी भूल है।

(ङ) ऐसे दीजिये मन्दिरके बाहर प्रेम—मन्दिरके बाहरवाले भगवान्‌को इस प्रकार प्रेम दीजिये—

(अ) शरीर—आपके पास तीन शरीर हैं—स्थूल शरीर, सूक्ष्म या भाव शरीर, कारण शरीर, हर समय यह स्मृति सजीव रहे कि 'स्थूल शरीर' साक्षात् भगवान् है। फिर दिनभर शरीरकी प्रसन्नता या हित-भावनासे इसके साथ व्यवहार करें। हितकी भावनासे शरीरको प्रातः चार बजेसे पहले उठायें, शौचादिसे निवृत्त करवायें, टहलायें, व्यायाम-प्रणायाम करवायें, नाश्ता-भोजन करवायें, आराम करवायें, संयमी-सदाचारी-स्वावलम्बी रखें। ऐसा करनेसे शरीररूपी भगवान् एवं शरीरको बनानेवाले भगवान्‌को प्रेम मिलेगा।

आपके मनमें रहनेवाले विचार या भावका नाम है—सूक्ष्म शरीर। मोह, ममता, कामना, राग, द्वेष, दीनता, अभिमान मनमें नहीं रखें। इनसे भावशरीर गन्दा हो जाता है। मनमें करुणा, प्रेम, क्षमा, हितकी भावना रखें। यही सूक्ष्म शरीररूपी भगवान्‌को प्रेम देना है।

कारण शरीरका अर्थ है—कर्तापनका अभिमान। सब कुछ प्रभु करते हैं, मैं कुछ नहीं करता—इस भावसे कारण शरीरको प्रेम मिलता है।

(ब) परिवारजन—हर समय यह स्मृति बनी रहे कि पति, पत्नी, संतान, माता-पिता आदि सभी परिवारीजन साक्षात् भगवान् हैं, मैं एक प्रेमी या सेवक हूँ—इस भावनासे उनकी भरपूर सेवा करें। उनकी सेवाके लिये

अपने सुखको प्रसन्नतापूर्वक छोड़ दें, दुःखको प्रसन्नतापूर्वक झेल लें तो आप प्रभुके प्रेमी भक्त बन गये। श्रीरामचरित-मानसमें भगवान्की वाणी है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा०च०मा० ४।३)

अर्थात् हे हनुमान्! (मेरा) अनन्य (भक्त) वही है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ, और चराचर जगत् मेरे स्वामी भगवान्का रूप है।

(स) समाज-संसार—हर समय यह स्मृति बनी रहे—सभी मनुष्य, सभी प्राणी भगवान् हैं। सबको प्रसन्नता दूँ, निकटवर्ती भाई-बहनोंकी क्रियात्मक सेवा करूँ। किसीको बुरा नहीं समझूँ, किसीका बुरा नहीं सोचूँ, किसीका बुरा नहीं करूँ—यही जगत्रूपी भगवान्को प्रेम देना है।

(द) कार्य—दिनभर विविध कार्य करते समय यह स्मृति बनी रहे कि ये भगवान्के कार्य हैं। उनको भगवान्की प्रसन्नताके लिये करें, अपने सुख-स्वार्थके लिये नहीं। भोजन, विश्राम भी 'शरीररूपी भगवान्'की प्रसन्नताके लिये करें।

(य) सामान-सम्पत्ति—हर समय यह स्मृति बनी रहे—सामान-सम्पत्तिके मालिक मेरे प्रभु हैं, यह उनकी धरोहर है। इसको सँभालकर रखना और इसका सदुपयोग करना है—इससे मेरे प्रभुको प्रसन्नता मिलेगी।

(५) कोई इच्छा न रखना—प्रेमी भक्तका पाँचवाँ व्रत है—मैं किसीसे कभी भी किसी भी प्रकारकी कोई इच्छा नहीं रखूँगा। 'किसीसे'का आशय है—अपने शरीर, परिवारजन, सम्बन्धियों, मित्रों, समाज, संसार, भगवान्से। 'कभी भी'का आशय है—वर्तमान, भविष्य। 'किसी भी प्रकारकी'से आशय है—सकारात्मक, नकारात्मक। इच्छाका आशय है—विशेष आग्रह, जैसे—शरीर स्वस्थ ही रहे, कभी बीमार हो ही नहीं; परिवारजन मेरी हर आज्ञा मानें ही, मैं जीवित ही रहूँ, मरूँ ही नहीं। जिस विचारके साथ ही लगा देते हैं, उसका नाम है—इच्छा। प्रेमीकी केवल एक इच्छा होती है। मेरे प्रभुकी इच्छा पूरी हो और वे प्रसन्नचित रहें।

प्रेमी तो अपने प्रभुसे बारम्बार यही प्रार्थना करता है—

मेरी चाही करण की, जो है तुम्हारी चाह।
तो अपनी चाही करो, यह है, मेरी चाह॥
तुम्हारी चाही में प्रभु, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अनजान॥

(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'भाईजी')

चाह तुम्हारी ही हो प्यारे! नित्य-निरन्तर मेरी चाह।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी, नहीं किसी की हो परवाह॥
चलता रहूँ निरन्तर, प्यारे! केवल एक तुम्हारी राह।
बिगड़े-बने जगत्का कुछ भी, कहूँ निरन्तर प्यारे! वाह॥

(पद-रत्नाकर, पद-संख्या १०७)

दुःख झेलनेके लिये तैयार—अपने प्रभुकी प्रसन्नता ही प्रेमी भक्तका जीवन एवं आचरण होता है। प्रभुकी प्रसन्नताके लिये प्रेमी भीषण दुःख, घोर अपमान, महान् विपत्ति झेलने और मरनेतकके लिये सदैव तैयार रहता है। प्रभुकी महान् भक्त 'श्रीराधाजी' के भावोंको 'श्रीभाईजी'ने निम्न शब्दोंमें प्रकट किया है—

वे अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्णसे निवेदन करती हैं—

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दुःखसे, हे प्रियतम!।
तो लाखों अतिशय दुःखोंसे घिरी रहूँगी मैं हरदम॥
किंचित्-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान।
तो लाखों अपमानोंको मैं मानूँगी प्रभुका वरदान॥
यदि प्यारे! मेरे वियोगमें मिलता तुम्हें कहीं आराम।
कभी नहीं मिलनेका मैं व्रत लूँगी, मेरे प्राणाराम!॥
मेरी आर्ति-विपत्ति कदाचित तुम्हें सुहाती हो यदि श्याम।
तो रखूँगी इन्हें पास मैं सपरिवार नित, दे आराम॥
मेरा मरण तुम्हें यदि देता हो किंचित्-सा भी आश्वासन।
तो मैं मरण वरण कर लूँगी, निकल जायेगा तनसे प्राण॥
सुखी रहो तुम सदा एक बस, यही नित्य मेरे मन चाह।
हर स्थितिमें मैं सुखी रहूँगी, नहीं करूँगी कुछ परवाह॥

(पद-रत्नाकर, पद-संख्या ६)

इस प्रकार प्रेमी भक्त बननेमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता और धन्यता है।

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ श्रद्धाके विकासके क्रम—आत्मकल्याणके साथ विश्वकल्याणकी भावनासे प्रभु प्रसन्न होते हैं; क्योंकि विश्व भगवान्‌का ही स्वरूप है। सबसे पहले ईश्वरमें, फिर गुरुदेवमें, फिर संतोंमें, फिर पिता-मातामें, फिर सभी मनुष्योंमें, फिर सभी प्राणियोंमें, फिर चराचरमें श्रद्धा करनी चाहिये। सबमें ईश्वर व्याप्त है, विराजमान है—यह भाव दृढ़ करना है। अन्तमें अपना इष्ट ही सब रूपोंमें है—यह ज्ञान हो जाय, लक्ष्य यही रखना चाहिये। यह ज्ञान, ऐसी भावना कठिन है, परंतु बात सच्ची है, इसलिये स्वीकार करना चाहिये। जैसे-जैसे मन, बुद्धि शुद्ध होंगे, वैसे-वैसे ज्ञान, भक्ति सुदृढ़ होगी। जन्म-जन्मान्तरोंके साधनोंसे भक्तिरूपी सिद्धि प्राप्त होती है। सद्गुरुदेव, सन्त, भगवन्तकी कृपा हो तो तत्क्षण ज्ञान और ज्ञानके बाद भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। ताराको भगवान्‌ने व्याकुल देखा तो दया आ गयी। श्रीरामजीने ज्ञान दिया और मायाको दूर कर दिया तब तारा श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़ी और उसने भक्तिका वरदान माँग लिया।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥
(रा०च०मा० ४।११।३, ६)

ताराको श्रीरामजीकी कृपासे तत्क्षण ज्ञान हो गया, फिर भक्ति मिली। ज्ञानका लाभ यही है कि भक्तिकी प्राप्ति हो। भक्ति-प्रेमके बिना ज्ञान नीरस है।

❀ छल-कपट जीवनमें कैसे दूर हो? श्रद्धापूर्वक सत्संग, कृष्ण-कथा-श्रवण, संकीर्तन, जप इनके द्वारा मनुष्य परमपद एवं प्रेमाभक्ति प्राप्त कर सकता है। भक्तिसे ही प्रभुमें सरलतासे मन जुड़ता है, इसलिये भक्तियोग ही सर्वश्रेष्ठ है। अतः भक्तियोग बड़ा है। नवधाभक्तिके अतिरिक्त केवल चार अंगोंका यदि कोई सेवन करे तो वह धन्य-धन्य, कृतकृत्य हो जाता है। इसीसे इसे ऋजुयोग अर्थात् सरल या सुगम योग कहते हैं। इससे छल-कपट दूर हो जाता है।

❀ सत्संग, कथा-श्रवण, संकीर्तन तथा जप। बस मात्र इतनेसे ही भक्तियोग सिद्ध हो जाता है। इन चारमें सत्संग प्रमुख है। निरन्तर सत्संगसे भक्ति करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है, पूर्वजन्मके संस्कारसे स्वाभाविकी भक्ति होती है। जैसे भूख-प्यास स्वाभाविक है, कोई यत्न नहीं करना पड़ता है, उसी प्रकार भक्ति किये बिना रहा न जाय तो स्वाभाविकी भक्ति है। दूसरी भक्तिको वैधी कहेंगे। सत्संग और कथा-श्रवणसे भक्तिका माहात्म्य जानकर भक्ति करना, मन न लगनेपर भी हठपूर्वक भक्तिके आचरण करना वैधी भक्ति है। भक्तिका आचरण आरम्भ कर देनेपर फिर उसमें रसाभास-स्वाद आता है और धीरे-धीरे भक्तियोग सिद्ध हो जाता है।

❀ आनन्दकर श्रीकृष्णके स्वरूपका चिन्तन, सब कुछ एवं सबके स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं—ऐसा निश्चय, श्वास-श्वासपर नामोच्चारण, कानोंसे भगवान् और भक्त-चरित्रका श्रवण, नेत्रोंसे श्रीकृष्णकी प्रतिमाओं एवं भक्तोंके दर्शन, वाणीसे भगवान्‌के गुण-प्रभावका वर्णन, शरीरसे भक्त-भगवान्‌की सेवा आदि वैष्णव धर्मोंका आचरण श्रीकृष्णकी शरणागतिके अन्दर ही आ जाते हैं। कोई भी कर्म तब पवित्र होता है। जब उसे श्रीकृष्णके लिये करके कृष्णार्पण कर दिया जाय। यही कर्म-रहस्य है।

❀ जो भक्तजन निरन्तर भक्ति-सरितामें गोते लगाते रहते हैं अर्थात् मन, वाणी, शरीरसे भक्तिमय कार्य करते हैं, उनके सामने अपने-आप आयी कैवल्य मुक्तिका भी आदर नहीं होता है; क्योंकि भक्ति यह सबसे श्रेष्ठ पदार्थ है। पाँचवाँ पुरुषार्थ है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चार पदार्थ हैं। भक्ति सर्वश्रेष्ठ पदार्थ एवं पुरुषार्थ है। इसे पानेके लिये मनमें इच्छा रखनी चाहिये और मन-वाणीसे तथा शरीरसे साधन करना चाहिये। जिस प्रकार भगवान् अनन्त, अनादि एवं दयामय हैं, उसी तरह भगवत् शरणागत भक्त भी दयामय होते हैं। यद्यपि प्रभु अन्तर्यामीरूपसे दुष्टोंके हृदयमें भी स्थित रहते हैं, परंतु वे बिना भक्तिके उनकी आँखोंसे ओझल रहते हैं। प्रभु कहते हैं—'मेरी कथा-सुधामें गोता लगानेसे अर्थात् प्रेमपूर्वक कथा-श्रवणसे सारा जगत् पवित्र हो जाता है। इसलिये मेरा नाम विकुण्ठ है। यह कीर्ति हमको भक्तोंके द्वारा ही प्राप्त हुई है। ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

सुखकी खोज

(श्रीविष्णुदयालजी वार्ष्णेय 'बजाज')

संसारमें प्रत्येक प्राणी अपने जीवनमें सुखकी खोज करता है, कितना ही सुख प्राप्त हो जाय परंतु सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होती। वह इसी मृगतृष्णामें पागल बना रहता है। वह हर प्रकारसे स्वयंको और अधिक सुखी बनाना चाहता है, परंतु सुख प्राप्त करनेके संसारमें अनेक-अनेक रास्ते हैं। सुखकी क्या परिभाषा है? सुख किन लक्ष्योंको प्राप्त करनेके बाद ही मिलेगा? ये हर व्यक्तिकी बुद्धि, मनोवृत्ति, चाहत एवं उसके संस्कारोंपर ही निर्भर है। कोई व्यक्ति शराबको अमृत कहता है तो कोई उसे जहर मानता है। कोई व्यक्ति सांसारिक भोग-विलासरूप लक्ष्यको प्राप्त करनेको सुखकी अनुभूतिका साधन मानता है। वह मायाके अनेकों रूपोंके लावण्यमें फँसकर अपनी इन्द्रियोंको सुख देनेका साधन मानता है। वह अपने सुखका आधार कामपूर्ति, किसी तरहसे किया गया धनसंचय, संतानवृद्धि, दूसरोंके अधिकारोंका हनन करना, बलात्कार, भ्रष्टाचार, प्रतिशोधपूर्ति एवं परनिन्दा, ईर्ष्या आदि कुत्सित मनोवृत्तियोंकी पूर्ति करनेको ही अपना परमलक्ष्य एवं अपनी वर्चस्वताका प्रतीक मानता है। इसीको सुखकी अन्तिम सीमा समझ बैठता है, परंतु वह यह नहीं समझता कि इन बातोंका परिणाम क्षणिक आभासी सुखके बाद मनकी अशान्ति, भय, शरीरमें रोगोंकी उत्पत्ति, समाजमें घृणित होना, दण्डनीय और दीन-हीन होना, धनका ह्रास, दीर्घकालीन मुसीबतोंमें फँस जाना एवं जीवनको नरक बना लेना और आगामी जीवनके लिये दुखद प्रारब्धोंको स्वयं ही बनाना है। यह अपघातके समान है अर्थात् यह सच्चा सुख न होकर दुःखोंकी खेती करना है।

सच्चा सुख तो अच्छे संस्कारोंवाले सत्कर्मोंको करनेसे होता है; दूसरोंको यथासम्भव सुख पहुँचानेसे और ईश्वर, समाज एवं स्वयंकी आत्मिक प्रसन्नतावाला कार्य करनेसे ही सुख होता है। सत्कार्योंसे ही मनुष्यको आत्मिक बल, प्रसन्नता, प्रशंसा एवं सुकीर्तिकी प्राप्ति होती है।

सच्चे सुखकी परिभाषा क्या की जाय, परिभाषा विस्तृत है। सच्चे सुखकी अनुभूति तभी हो सकती है जब मनुष्यका मन निर्विकार यानी तृष्णा, ईर्ष्या, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभकी भावनासे रहित हो। किसी प्रकारकी महत्त्वाकांक्षा न हो। अधिकतर यह देखा जाता है कि मनुष्य अपनी महत्त्वाकांक्षाकी पूर्तिको सच्चा सुख समझते हुए अपने मनकी शान्ति, अपने चरित्र, ईमान, धन, तन और ख्यातिको दाँवपर लगाकर सुखकी खोजमें पागल हो जाता है और अपने जीवनमें अनेकों कष्टोंमें घिरा और स्वयंको सबकी दृष्टिमें हास्यास्पद बना डालता है।

देखा जाय तो उसे सच्चा सुख, वर्चस्वताकी भावना और भौतिकताकी होड़से दूर रहने एवं ईश्वरके प्रति भक्तिभाव रखनेसे ही प्राप्त होता है। मनुष्यको चाहिये कि वह ईश्वरप्राप्तिके लिये प्रयत्नरत रहे और मायासे विरक्त हो जाय, इससे उसे सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ईश्वरप्राप्तिके सही रास्ते क्या हैं? तो ईश्वरप्राप्तिके रास्ते निम्नलिखित हैं—

१. आप प्रभुके सत्य सार्थकरूपको समझें, संसारमें उसके सर्वव्यापी दर्शन करें। संसारकी रचना प्रभुने बड़ी आश्चर्यजनक कारीगरीसे की है। जो हमारी समझ एवं कल्पनाओंसे भी परे है, वह कैसे—

उसने संसारमें जल, थल और नभमें करोड़ों प्रकारके जीवधारियों जिनमें तरह-तरहके गुण तथा जीवनके तौर-तरीके हैं, तरह-तरहकी बोलियाँ हैं, रूप है—इसी प्रकार करोड़ों प्रकारके पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियाँ हैं, जिनके तरह-तरहके रंग, गुण, स्वाद, रूप एवं उपयोग हैं। तरह-तरहके फल-फूल और तरह-तरहके ऐसे जानवर हैं, जो सुईकी नोंकके आकारके होनेपर भी हर प्रकारके गुणों और जीवनयापी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं।

ईश्वरने संसारमें हजारों प्रकारकी नदियाँ, झीलें, झरने, स्रोत एवं समुद्र तथा जमीन और समुद्रके अन्दर सैकड़ों रासायनिक पदार्थों, धातुओं एवं जड़ी-बूटियों तथा जीव-जन्तुओंका निर्माण किया है। इतना विशाल संसार? वह भी स्वचालित होना अति आश्चर्यजनक है! इससे संसारके कण-कणमें उस ईश्वरके दर्शन ज्ञान-चक्षुओंसे चाहे जब किये जा सकते हैं। ईश्वरने हमारे शरीरके अंग-प्रत्यंगमें पंचतत्त्वोंके माध्यमसे एवं ईश्वरीय अंश (आत्मा)-

से उसने हमें जीवन दिया है। हर श्वासपर उसका अधिकार है। श्वास-श्वास उसीका प्रसाद है। उसने जो भी शक्तियाँ संसारमें बनायी हैं, उनका लाभ बिना किसी भेदभावके प्रत्येक गरीब-अमीरको निःशुल्क और समय-समयपर अपनी सन्तान समझते हुए दिया है। इसीलिये उसे हम परमपिता कहते हैं। हमें चाहिये कि हम उसके प्रति श्रद्धावान् हों, भक्तिभावके साथ स्वयंको उसके समर्पित करें, इससे उसके दर्शनका आनन्द यानी सच्चा सुख हमें स्वयं प्राप्त हो जायगा।

२. ईश्वर सर्वव्यापी है, कण-कणमें समाया हुआ है—**'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।'**

अर्थात् भगवान् सबके हृदयमें विद्यमान हैं, वे हमसे दूर नहीं हैं। वे हर समय, हर स्थानपर, हर जन्म-जन्मान्तरमें हमारे साथ हैं। यदि यह सोच हमारे दिल-दिमागमें होगी तो मनमें प्रफुल्लता एवं अत्यन्त सुख रहेगा।

३. जब ईश्वर सर्वव्यापी है, वह कण-कणमें व्याप्त है, तो फिर हर प्राणीमात्रमें उसके दर्शन करते हुए हमारा कर्तव्य है कि हम हर प्राणीकी सेवामें निःस्वार्थ भावसे जुट जायँ, किसी प्राणीको किसी प्रकारका दुःख न दें। सेवा करते समय उससे जाति, धर्म, समुदाय, रंग, उम्र आदि किसी प्रकारका भेद न रखें तो हमें अपने मनके अन्दर एक अभूतपूर्व आनन्द प्राप्त होगा, वही सच्चा सुख बिना खोजे ही स्वयं तुम्हें प्राप्त होगा, प्राणीकी सेवामें यदि कष्ट प्राप्त हो तो ईश्वर उसे सहनेकी शक्ति भी देता है; क्योंकि आप ही सोचो, वह सबका पिता—परम पिता है और पिता तब प्रसन्न होता है, जब उसकी संतानको कोई सुख पहुँचाता है।

४. किसीके अधिकारका हनन न करें—यदि आप किसी वस्तु, स्त्री, जमीन, धनपर अवैध अपना अधिकार जमाते हैं, उसे उसके अधिकारसे वंचित करते हैं, उसे आत्मिक कष्ट देते हैं तो उसकी आह तुम्हें बर्बाद तो करेगी ही, साथ-ही-साथ तुम्हारी आत्मा तुम्हें धिक्कारेगी, समाज तुम्हारा सम्मान मनसे नहीं करेगा, बुरी दृष्टिसे देखेगा। साथ ही ईश्वर जो सबका पिता है, वह भी रुष्ट हो जायगा। फलतः आप सुखी न रह सकोगे, आपकी आत्मा बलहीन हो जायगी; क्योंकि आपने अपनी आत्माका बलात्कार किया है, इसलिये आप दण्डके भागीदार हैं; क्योंकि ईश्वरका अटल नियम है कि कर्म चाहे अच्छा हो या बुरा हो, तबतक नष्ट नहीं होता जबतक कि उसका फल आप भोग नहीं लेते, फिर सोचो कि हमें अच्छे कर्म करने चाहिये या नहीं। दुष्कर्मी व्यक्ति सदैव दुखी ही रहता है, उसे कभी सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता।

५. कोई भी प्राणी जो दीन, हीन, दरिद्र, अपाहिज, साधनहीन या मजबूर है, उसकी सेवा ईश्वरकी सेवा है। जो ऐसे प्राणियोंको प्यार करता है, उसे ईश्वर प्यार करता है। वह सदैव समाजमें आदर प्राप्त करता है। वह जिनकी सेवा करता है, उनकी आत्माका अकाट्य आशीर्वाद प्राप्त करता है। ईश्वर उसको अपना रक्षा-चक्र दे देता है और वह आत्मिक सुख प्राप्त करता है।

६. कर्मानुसार ही फल पाना—हम अपने स्वार्थहेतु अपनी दसों इन्द्रियोंको सुखी करनेको इस चंचल मनके आदेशको बिना सोचे-समझे, बिना परिणाम जाने-समझे जो भी कर्म करते हैं, चाहे वह अच्छे हों या दुष्कर्म हों, ईश्वरके न्यायानुसार हम जबतक उनका फल नहीं भोग लेते, तबतक वे कर्म नष्ट नहीं होते। महाभारतकी कथाके अनुसार भीष्म-पितामहको बाणोंकी शैय्यापर सोना पड़ा। जुआ खेलना दुष्कर्म है, उसीके फलस्वरूप द्रौपदीका चीरहरण हुआ और पाण्डवोंको राज्य छोड़कर वन जाना पड़ा। श्रवणकुमारके माता-पिताद्वारा दुखी होकर दशरथको शाप देनेके फलस्वरूपकी पुत्रवियोगमें मृत्यु हुई—ये सब कर्मोंके फल ही तो थे।

प्रारब्धोंके अनुसार कोई बच्चा पैदा होते ही माँद्वारा ही फेंक दिया जाता है, उसे जानवर नोच-नोचकर अपना भोजन बना लेते हैं, क्या उस बच्चेको अपार कष्ट न होता होगा, अवश्य वह अपने दुष्कर्मोंका फल भोगने आता है। दूसरी तरफ एक बच्चेके पैदा होते ही अपार खुशियाँ मनायी जाती हैं, असीमित दान बाँटा जाता है, दुन्दुभी और शहनाई बजायी जाती है अर्थात् उसे अति सम्मानित किया जाता है, वह अपार प्यार पा जाता है,

उसके माता-पिताको बधाइयाँ दी जाती हैं।

कोई बच्चा जन्मसे ही अपाहिज, रोगी होता है। कोई व्यक्ति जीवनभर रोगी, कर्जदार और अभागा ही बना रहता है; तो कोई व्यक्ति अपार धनी, सुखी, रूपवान् और समाजमें सम्माननीय जीवन व्यतीत करता है।

ये सब क्या है—ये ईश्वरकी कृपा नहीं, ये तो अपने द्वारा किये गये कर्मोंका फल है, ईश्वर किसी प्राणीसे द्वेष या रागका बर्ताव नहीं करता, वह तो केवल अपनी न्यायतुलापर तोलकर ही कर्मका भोग्य निश्चित करता है। फिर क्यों न दुष्कर्मोंसे बचा जाय और अच्छे पुण्य-कर्म संचित किये जायँ।

अच्छे कर्म यानी दूसरोंके हितार्थ कार्य करना, प्राणिमात्रको प्रसन्न रखना आदि। अच्छे कर्म करनेसे मनुष्यको मनमें एक अनोखी शान्ति, प्रसन्नता और सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

७.अच्छे कर्मोंकी परिभाषा—अच्छे कर्मोंकी कसौटी है कि आपकी आत्मा जिस कार्यको करनेमें प्रसन्न हो, दूसरोंका हित होता हो, जिससे किसी व्यक्ति, समाज, परिवार जाति व राष्ट्रके दुःख दूर हों, उनका उद्धार हो। उनके द्वारा सराहना की जाय तो समझो हमारा कार्य सत्कर्म है या पुण्यकर्म है।

८. आरोग्यता—हमारे जीवनमें अच्छे-बुरे सभी प्रारब्धोंके फल भोगनेका एक ही साधन (माध्यम) है, वह है हमारा शरीर। यदि यह स्वस्थ है तो हम सब कार्य बिना कष्ट पाये प्रसन्नतासे कर सकेंगे। अतः शरीरका स्वस्थ होना अति आवश्यक है—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

शरीर ही धर्मकार्योंके सम्पादनका साधन है। इसे स्वस्थ रखना अति आवश्यक है। जो स्वस्थ रहनेकी कला जानता है, वह बार-बार बीमार नहीं पड़ता।

शरीरका मोटा होना स्वस्थ होनेकी पहचान नहीं है, यदि मनुष्य मोटा-ताजा है, परंतु उसमें स्फूर्ति नहीं है, उसके शरीरमें रोगोंके कीटाणु मौजूद हैं। उसके शरीरके भीतरी और बाहरी अंग अपना-अपना धर्म सही ढंगसे नहीं निभाते तो वह मनुष्य रोगी है। स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। आयुर्वेदमें स्वस्थ मनुष्यकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात् वही मनुष्य पूर्ण स्वस्थ है, जिसके शरीरमें वात अर्थात् स्नायुमण्डल (Nervous system) पित्त अर्थात् पाचकाग्नि एवं रक्तसंवहन तन्त्र (Digestion and blood circulatory system) और कफ अर्थात् ओज (जीव शक्ति) और मलोत्सर्ग (Vitality and Exeretorus system)—ये तीनों निश्चित अवस्थामें बराबर-बराबर एक समान हों और तीनों प्रणालियाँ यथावत् काम करती हों। जिसकी अग्नि सम हो, दहन न तीव्र हो न मन्द। जिसे खाया-पिया सही ढंगसे पचता हो। समधातु अर्थात् रस, रक्त, मांस, मज्जा आदि समस्त शारीरिक धातुएँ कम-अधिक न हों, वह स्वस्थ कहा जाता है।

जिसकी मलक्रिया अर्थात् शरीरगत मलों (मल, मूत्र, पसीना आदि शारीरिक गन्दगी)-को भीतरसे बाहर निकालने-वाली प्रणाली समुचित कार्य करती है, वही स्वस्थ है।

यह अकाट्य सत्य है कि शरीर स्वस्थ होनेपर ही प्राणिमात्रको सुख प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं। ***पहला सुख निरोगी काया।***

संसारके सभी विकारोंसे विरक्ति प्राप्त होनेपर ही मनुष्यको ईश्वरभक्तिका परम आनन्द प्राप्त हो सकता है।

ईश्वरभक्ति पाँच प्रकार की होती है अर्थात् भगवान् और भक्तके मध्य पाँच प्रकारके सम्बन्ध हो सकते हैं, यह भक्तकी इच्छापर निर्भर करता है कि वह ईश्वरको किस रूपमें अपना समर्पण, प्रेम और अपनी श्रद्धा प्रस्तुत करता है—

१. कोई निष्क्रिय अवस्थामें भक्त हो सकता है।
२. कोई सक्रिय अवस्थामें भक्त हो सकता है।
३. कोई सखा (मित्र)-के रूपमें भक्त हो सकता है।
४. कोई माता या पिताके रूपमें भक्त हो सकता है।
५. कोई पति-पत्नी या प्रेमीके रूपमें भक्त हो सकता है।

भगवद्गीता (१५। ५)-में भगवान् श्रीकृष्णने सुझाव दिया है कि हम निम्न प्रकारसे आध्यात्मिक

जगत्‌की प्राप्ति करके परम सुखको प्राप्त हो सकते हैं—

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

पदमव्ययं अर्थात् सनातन राज्य (धाम)-को वही प्राप्त होते हैं, जो निर्मानमोहा हैं। इसका अर्थ क्या हुआ ? हम उपाधियोंसे चिपके रहते हैं, यानी उपाधियों जैसे—कोई महन्त मठाधीश बनना चाहता है, कोई 'प्रभु' तो कोई राष्ट्रपति, धनवान् आदि जबतक हमारे मनमें बड़े-बड़े पदोंकी लालसा है, जो शरीरसे सम्बन्धित हैं। इनकी ओर ध्यान रहनेपर ईश्वरभक्ति कदापि नहीं हो सकती।

ईश्वरभक्ति प्राप्त न होकर जबतक हम मायामें आसक्त रहेंगे तबतक परम सुख प्राप्त करनेकी खोजका लक्ष्य कभी प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि यह मायारचित संसारमें हमको इसके सभी दुखदायी गुण जैसे—काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, तृष्णा, अहंकार, प्रतिशोध, बड़प्पनकी लालसा—सभी अपनी तरफ प्रबलतासे आकर्षित करके अपने रंगोंमें रँगकर हमारी पाप-पुण्यका निर्णय करनेकी शक्तिका हरण करके ईश्वरसे और उनकी भक्तिसे और उससे प्राप्त आनन्दसे सदैव दूर ही रखेंगे।

अतः हम सुखकी प्राप्ति समझते हुए अपनेको धोखा देते रहेंगे और उस सुखको जो क्षणिक है, उसके पीछे दीर्घ दुःखको समझनेका विवेक खोकर स्वयं दुखी ही होते रहेंगे। परिणामतः सच्चे सुखकी खोज नहीं कर पायेंगे। सुखप्राप्तिका मूलमन्त्र है—

निर्मल मन और स्वस्थ तन संग मधुर व्यवहार।
प्राणी सेवा, भक्तिरत ये सदा सुख आधार॥

'कैसे तेरे पास भिजाऊँ'

(श्रीमती कृष्णाजी मजेजी)

कैसे तेरे पास भिजाऊँ, अन्तर्मन के भाव घनेरे।
कैसे तेरे द्वार पे आऊँ, नाथ बताओ हम हैं तेरे॥
इक आशा की किरण जगाकर,
तेरे द्वारे भजनन गाकर।
प्रेम भक्ति से ये मन मेरा,
कृपावन्त मन तुमको टेरे॥
कैसे तेरे पास भिजाऊँ, अन्तर्मन के भाव घनेरे।
कैसे तेरे द्वार पे आऊँ, नाथ बताओ हम हैं तेरे॥
जप तप कर्म सभी विन दर्शन,
न भाये हैं मोरे भगवन्।
श्री चरणन में रख लीजिये,
आ जाओ घनश्यामजी मेरे॥
कैसे तेरे पास भिजाऊँ, अन्तर्मन के भाव घनेरे।
कैसे तेरे द्वार पे आऊँ, नाथ बताओ हम हैं तेरे॥
बसा लीजिये इस चित चरणन,
इन नयनों में श्यामल चितवन।
हूँ जैसी भी नाथ तुम्हारी,
तुमको ही मन पल-पल टेरे॥
कैसे तेरे पास भिजाऊँ, अन्तर्मन के भाव घनेरे।
कैसे तेरे द्वार पे आऊँ, नाथ बताओ हम हैं तेरे॥

अपनी ओर निहारो

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

हम मानव हैं और मानव होनेके नाते हमारे जीवनका बड़ा महत्त्व है, इसकी बड़ी महिमा है। महिमा इसलिये है कि जितने भी प्रश्न हैं, वे सब मानवके ही सामने हैं। यदि दुःख-निवृत्तिका प्रश्न है, तो मानवका प्रश्न; परमशान्तिका प्रश्न है, तो मानवका प्रश्न; स्वाधीनताका प्रश्न है तो मानवका प्रश्न और परम प्रेमका प्रश्न है तो मानवका प्रश्न।

यह बात केवल आपके ही जीवनमें है, इसलिये आप अद्वितीय हैं। आप जो कर सकते हैं, वह कोई दूसरा नहीं कर सकता। आपको जो मिल सकता है, वह किसी अन्यको नहीं मिल सकता। इसलिये निःसन्देह आप अनुपम हैं। आप कहेंगे, क्यों? प्रभुने सृष्टिकी रचना भले ही की हो, पर प्रभुमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वे किसीको यह कह सकें कि तुम मेरे नहीं हो और आप जानते ही हैं कि आपमें यह सामर्थ्य है कि मिली हुई प्रत्येक वस्तुकी ममताको आप छोड़ सकते हैं, कामना तोड़ सकते हैं। और आप यह भी जानते हैं कि प्रभु जिसे अपना कहते हैं, उसे जानते भी हैं, लेकिन आपमें यह विलक्षणता है कि आप उनको बिना जाने ही अपना कह सकते हैं। आप सोचिये, इन्द्रिय-दृष्टिसे, बुद्धि-दृष्टिसे आप जो जानते हैं, उसकी ममता-कामना छोड़ सकते हैं। और जिसको केवल सुना है, जानते नहीं हैं, उससे आप आत्मीय सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। यह अनुपम कार्य मानव ही कर सकता है। यह बात अलग है कि उसने इतना सुन्दर आपको बनाया है! किसने? जिसे आप जानते नहीं, पर जो आपको जानता है।

मुझे कोई नयी बात आपको नहीं बतानी है। क्यों? मुझे यह विदित हो गया है कि उसीकी अहैतुकी कृपासे प्रत्येक मानवका गुरु, उसका नेता और उसका शासक सदैव उसके साथ है, सदैव ही उसके साथ है। आपका गुरु, आपका नेता आपमें मौजूद है, परंतु उसकी उपस्थितिका फल आपको तभी मिल सकता है, जब आप अपना गुरु बनना पसन्द करें तब, जब आप अपना नेता बनना पसन्द करें तब, जब अपना शासक बनना पसन्द करें तब, किंतु हमसे भूल यह होती है कि हम अपने नेता, गुरु, शासक न बनकर दूसरोंके नेता, गुरु और शासक बनना पसन्द करते हैं। और उसका परिणाम होता है—आप जानते हैं, क्या? उसका परिणाम होता है कि हमारे पीछे बहुतसे भाई-बहन चलने लगते हैं, हमारे गीत गाने लगते हैं, हमारी महिमाका वर्णन करने लगते हैं। लेकिन यदि आप शिष्योंकी दशाको देखें, तो एक चीज आप उनमें पायेंगे, और वह यह कि आजके युगमें शिष्य वही कहलाता है, जो गुरुकी बात न माने। जितना क्रोध आज ईसाके पीछे चलनेवालोंमें है, उतना किसीमें है क्या? विनाशकारी आविष्कार उन्हीं लोगोंने किये हैं, जिन्होंने ईसाको अपना नेता-गुरु-पीर-पैगम्बर-पथप्रदर्शक माना है। विचार कीजिये, यह आजके शिष्यकी लीला है कि गुरुको माने, पर गुरुकी बातको न माने। और आप जानते हैं कि आजके समाजकी क्या गति है? नेताको माने, उसके स्मारक बनाये, उसकी शताब्दी मनाये, पर बात उसकी न माने। यह आजके समाजकी दशा है। और आप जानते हैं कि आजके शासककी क्या दशा है? जिस बातको करनेके लिये दूसरेको मना करे, स्वयं उसीको करे। ऐसी भयंकर परिस्थितिमें एक मौलिक प्रश्न हमारे-आपके सामने उपस्थित है और वह मौलिक प्रश्न यह है कि हमारे व्यक्तिगत जीवनका चित्र आज क्यासे क्या हो गया है, पारिवारिक-जीवन कैसा बिगड़ गया है, और सामाजिक जीवन कैसा विकृत हो गया है! इनको सँभालनेका यह जो मौलिक प्रश्न हमारे सामने है, उसीपर ध्यान देना है और जीवनके उस प्रश्नपर जब आप विचार करेंगे, तो आपको मानना पड़ेगा और मैं ऐसा कहनेके लिये इसलिये बाध्य हूँ कि जो बहुतसे भाई-बहन मिलते हैं, वे यही कहते हैं कि क्या बतायें महाराज! भगवान्‌को हम मानते तो हैं, और चाहते भी हैं, पर उनमें मन ही नहीं लगता। आत्माको हम जानते तो हैं, सुना भी है, पर इस ज्ञानमें दृढ़ता नहीं होती। महाराज! हम तो भौतिकवादी हैं, संसारको मानते हैं, पर विश्व-प्रेमकी अभिव्यक्ति ही नहीं होती। यह तो है हमारी व्यक्तिगत दशा। जिसको मानते हैं, उसीमें मन नहीं लगता।

जिसको मानते हैं, उसीमें प्रेम नहीं होता। जो जानते हैं, उसीको आचरणमें नहीं लाते। यही आज हमारी व्यक्तिगत दशा है। अब पारिवारिक दशाको देखिये। पारिवारिक दशा यह है—मेरे पास बहुत-सी बहनोंकी, बहुत-से भाइयोंकी ऐसी अनेकों बातें सामने आती हैं, जिनमें पत्नी पतिसे असन्तुष्ट है, पति पत्नीसे असन्तुष्ट है, भाई भाईसे असन्तुष्ट है, पिता पुत्रसे असन्तुष्ट है, पुत्र पितासे असन्तुष्ट है और क्या बतायें, पड़ोसी पड़ोसीसे असन्तुष्ट है। यह आज हमारी पारिवारिक दशा है। और रही सामाजिक दशाकी बात, सो अगर शुद्ध विष आप लेना चाहें, तो वह भी मिलना दुर्लभ होगा। यह सामाजिक दशा हो गयी है।

ऐसी भयंकर परिस्थितिमें उसके सुधारके लिये आज हम कहीं तो राष्ट्रीयताके गीत गाते हैं, कहीं धार्मिकताके गीत गाते हैं, न जाने क्या-क्या कहते और करते रहते हैं। चर्चा कर रहे हैं किसी और जीवनकी, किसी और देशकी, और हैं हम किसी और ही देशमें, कुछ भिन्न ही। ऐसी शोचनीय परिस्थिति है। अतः हमें और आपको अपने साथ क्या करना है, इस प्रश्नपर हम विचार करें। मैं क्षमा चाहूँगा, मैं आपको यह नहीं कहता कि आप दूसरोंके साथ क्या करें, परंतु भाई मेरे! यह तो आपको सोचना ही चाहिये कि आप अपने साथ क्या करें? क्या आप अपने साथ वह करते हैं, जो आपको करना चाहिये?

आपकी दशा क्या है? यदि कोई दूसरा भाई, दूसरा महजब, दूसरा इज्म, दूसरा वर्ग, दूसरा देश, हमारे साथ वह करता है, जो उसे नहीं करना चाहिये, तो हम चीखते-चिल्लाते हैं, किंतु हम स्वयं जब अपने साथ वह करते हैं, जो नहीं करना चाहिये, तब आप सोचिये और गम्भीरतासे सोचिये—जो देशका अभिमान रखते हैं, वे देशवासी विचार करें—क्या आप अपने देशके साथ वही करते हैं, जो आपको करना चाहिये? जो परिवारका दम भरते हैं, वे भी विचार करें कि आप परिवारके साथ क्या वही करते हैं, जो आपको करना चाहिये? क्या आप स्वयं अपने साथ वही करते हैं, जो आपको करना चाहिये। यदि वैसा करते होते, तो मेरा विश्वास है—यदि यह कह दूँ तो छोटे मुँह बड़ी बात होगी—मेरा यह अनुभव है कि यदि हम अपने साथ बुराई न करते, तो संसारकी सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे साथ बुराई कर सके। यदि हम देशवासी अपने देशको स्वयं न बिगाड़ते तो किसीकी सामर्थ्य नहीं होती कि हमें बिगाड़ सकता। यह सांकेतिक भाषा है। लेकिन इसमें दर्द है, इसमें पीड़ा है। जब-जब मैं सोचता हूँ, तब-तब मैं इस निष्कर्षपर पहुँचता हूँ कि हे मानव! तूने अपने साथ जितनी बुराई की है, कोई दूसरा तेरे साथ उतनी बुराई कभी कर ही नहीं सकता, परंतु बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है, हृदय फटता है कहनेमें कि हम इस बातको भूलते ही नहीं कि दूसरोंने हमारे साथ क्या बुराई की और यह सोचते ही नहीं कि हमने अपने साथ क्या बुराई की!

आप पूछ सकते हैं कि अगर हम अपने साथ बुराई न करेंगे तो इससे समाजका क्या लाभ होगा? मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि यदि आप अपने साथ बुराई नहीं करेंगे, तो इससे आपका जीवन समाजके लिये उपयोगी हो जायगा। कैसे हो जायगा भाई? बड़ी सीधी सरल बात है। वह इस प्रकार हो जायगा कि जब आप अपने साथ बुराई नहीं करेंगे, तो आप बुरे नहीं रहेंगे और जब आप बुरे नहीं रहेंगे, तब क्या होगा, उसका क्या अर्थ निकलेगा? कर्म कर्ताका चित्र है। कर्मकी उत्पत्ति कर्तामें-से होती है और सही कामसे ही सुन्दर समाजका निर्माण होता है। सुन्दर समाजका निर्माण बढ़िया-बढ़िया सड़कोंके बनानेमें नहीं है, सुन्दर समाजका निर्माण अच्छे-अच्छे बँगले बनानेमें नहीं है। सुन्दर समाजका निर्माण बहुत-सा सामान इकट्ठा करनेमें नहीं है। आप स्वयं सोचिये, बँगला बढ़िया हो, पर रहनेवाला पागल हो। क्या इससे समाज सुन्दर हो जायगा? यह सुन्दर समाज नहीं है। सुन्दर समाज सही काम करनेसे बनता है। सही काम कहाँसे निकलता है? खेतमें नहीं उपजता, पेड़पर नहीं लगता, नदियोंमें बहकर नहीं आता। सही काम सही कर्तामें-से ही निकलता है। सही कर्ताका चित्र है, सही काम। और सही कर्ता कौन होता है भैया? जो अपने साथ अपनेद्वारा बुराई न करे। और अपने साथ बुराई न करनेकी सामर्थ्य किसमें आती है? जो भूतकालकी घटनाओंके अर्थको अपनाता है और घटनाओंको भूल जाता है, वही व्यक्ति अपने साथ बुराई नहीं करता।

संत-चरित—

महात्मा तैलंग स्वामी

(श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी मिश्र 'माधव')
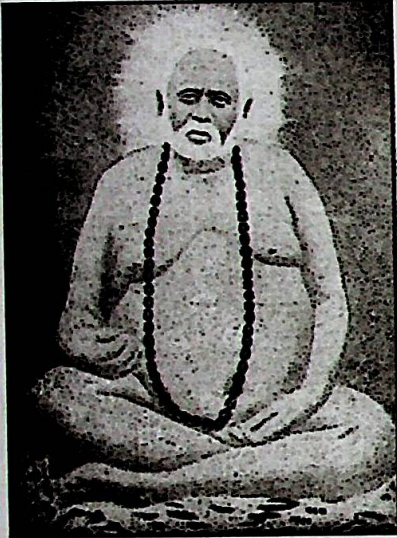
प्राय: डेढ़ सौ वर्ष पूर्व काशीमें तैलंग स्वामी नामक एक बहुत प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। आप एक परमसिद्ध योगी और जीवन्मुक्त पुरुष थे। सदा दिगम्बरवेशमें रहा करते थे। ये भूत-भविष्य-वर्तमानकी बातें जानते थे और किसीके आनेपर बिना कुछ कहे उसके मनके प्रश्नका उत्तर दे दिया करते थे। जल-थल, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सब आपके लिये समान था। ये सदा परदु:खकातर रहा करते थे। मान, प्रसिद्धि और ख्यातिसे बहुत दूर भागते थे। जलपर पद्मासन लगाना, गंगाजीमें तीन-तीन दिनतक लगातार डूबे रहना, समाधि लगाकर दूरका समाचार जान लेना, आकाशमें निराधार स्थित रहना इत्यादि बातें उनके लिये बहुत साधारण थीं। २८० वर्षकी अवस्थामें आपने महासमाधि ली।

दक्षिण भारतके विजियाना ग्राममें विक्रमीय सम्वत् १६६४ के पौष मासमें आपका एक सुसम्पन्न ब्राह्मणपरिवारमें जन्म हुआ। नाम रखा गया 'शिवराम'। आप अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे। बचपनसे ही संसारके विषयोंके प्रति वैराग्य तथा अध्यात्मकी ओर प्रवृत्ति इनमें देखी गयी। युवावस्था आते-आते इनकी उदासीनता स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगी। पिताका देहान्त पहले हो चुका था। माताने इन्हें बहुत लाड़-प्यारसे पाला था और माताके उपदेशोंसे इन्हें अध्यात्ममें बढ़नेका ही बराबर प्रोत्साहन मिलता रहा। पिताके वियोगके बारह वर्ष पश्चात् माताका भी वियोग हो गया। इस समय आपकी उम्र ४८ वर्षकी थी। अब इन्होंने अपनेको सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त पाया। माताकी अन्त्येष्टिक्रिया करके वे घर नहीं लौटे। जिस स्थानपर माताका अग्निसंस्कार हुआ था, उसी स्थानपर ये बैठ गये और पीछे वहीं इनके लिये कुटी भी बन गयी।

उस स्थानपर बीस वर्ष आपने कठोर साधना की। महापुरुषकी खोजमें अब आप वहाँसे बाहर निकले। भाग्यवश भगीरथ स्वामीके दर्शन हुए। पुष्करक्षेत्रमें गुरुसे दीक्षा ली। दो वर्ष बाद गुरु भी इस लोकसे चलते बने। तैलंग स्वामी कई स्थानोंमें घूम-फिरकर अन्तमें रामेश्वरम् पहुँचे। इसके अनन्तर नैपाल, मानसरोवर, नर्मदातीर, प्रयाग आदि स्थानोंमें बहुत दिनोंतक साधना की। ख्याति होते ही एक स्थानसे दूसरे स्थानको चले जाते। अन्तमें काशीधाम पधारे। वहाँ महात्मा तैलंग स्वामीके सम्बन्धमें अनेकों चमत्कारकी बातें प्रचलित हैं। प्रयागमें आपने आदमियोंसे भरी हुई एक नावको आँधी-पानीके कारण डूब जानेपर पुन: बाहर निकाल लिया। काशीमें एक अँगरेज अफसरने दिगम्बर रहनेके कारण इन्हें हवालातमें बन्द कर दिया। सबेरे देखा गया तो हवालातका ताला बन्द है और स्वामीजी हँसते हुए बाहर टहल रहे हैं। पूछनेपर इन्होंने बतलाया कि 'ताला-चाभी बन्द कर देनेसे ही किसीका जीवन बाँधा नहीं जा सकता। यदि ऐसा होनेको होता तो मृत्युकालमें हवालातमें बन्द कर देनेसे मनुष्य मौतके मुँहसे ही बच जाता।'

आपका दृढ़ विश्वास था कि भगवान् यह मनुष्यशरीर बनाकर स्वयं इसमें विराजते हैं। प्रत्येक मनुष्यके अन्दर ईश्वरीय शक्ति ओतप्रोत हो रही है। मनुष्य जितना संसारके लिये परिश्रम करता है, उसका शतांश भी यदि भगवान्‌के लिये प्रयत्न करे तो वह उसे प्राप्त कर सकता

है और उस समय संसारमें उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं रहेगा।

उन्हें प्राप्त करनेके लिये साधना करनी चाहिये। उनकी भक्ति करनी चाहिये, गुरूपदिष्ट मार्गका अनुसरण करना चाहिये। इस संसारमें एक भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। भगवान्‌को प्राप्त करनेका यही सबसे उत्तम मार्ग है।

वि० सं० १९४४ की पौष शुक्ल ११ को आप ब्रह्ममें लीन हो गये। इनकी आज्ञाके अनुसार इनके शवको बक्समें बन्द करके गंगाजीकी बीचधारामें छोड़ दिया गया।

महात्मा तैलंग स्वामी पांचभौतिकरूपसे यद्यपि हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी उनके अमूल्य वचनामृत साधकोंका पथप्रदर्शन करते हैं। यहाँ उनके कतिपय साधनपरक उपदेश दिये जा रहे हैं—

१-असन्तुष्ट मनुष्य किसीको भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जो सर्वदा सन्तुष्ट रहता है, वह सबको प्रफुल्ल कर सकता है।

२-जिह्वा पापकी बातें कहनेमें बहुत ही तत्पर रहती है, उसको संयत करना आवश्यक है।

३-आलस्य सब अनर्थोंका मूल है, यत्नपूर्वक आलस्यका परित्याग करो।

४-संसार धर्माधर्मकी परीक्षाकी भूमि है, सावधान होकर धर्माधर्मकी परीक्षा करके कार्यका अवलम्बन करो।

५-किसी धर्मके प्रति अश्रद्धा न रखो, सभी धर्म सार हैं और उनमें अवश्य ही सत्य निहित है।

६-दरिद्रको दान दो। धनीको दान भी देना व्यर्थ है, क्योंकि उसको आवश्यकता नहीं है, इसी कारण वह आनन्दित नहीं होता।

७-साधुका सहवास ही स्वर्ग तथा असत्संग ही नरकवासका मूल है।

८-आत्मज्ञान, सत्पात्रमें दान और संतोषका आश्रय करनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति होती है।

९-जो शास्त्र पढ़कर तथा उसके अभिप्रायको जानकर उसका अनुष्ठान नहीं करते, वे पापीसे भी अधम हैं।

१०-किसी भी कार्यके अनुष्ठानके मूलमें धर्म होना चाहिये, नहीं तो सिद्धि न होगी।

११-कभी किसीकी भी हिंसा न करो, सत् या असत् उद्देश्यसे कभी किसी प्राणीका वध न करो।

१२-जो आदमी पाप-कलंकको बिना धोये, मिताचारी और सत्यानुरागी बिना हुए गेरुआ वस्त्र धारणकर ब्रह्मचारी बनता है, वह धर्मका कलंकरूप है।

१३-बिना छप्परके घरमें जैसे वर्षाका पानी गिरता है, चिन्तनरहित मनमें भी उसी प्रकार शत्रु प्रवेश करते हैं।

१४-पापी लोग इहकालमें अनुतापाग्निसे दग्ध होते हैं, वे जब-जब अपने कुकर्मोंको याद करते हैं, तब-तब उनके प्राणोंमें अनुताप जाग उठता है।

१५-मननशीलता अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग है, मननशून्यता मृत्युका मार्ग है।

१६-शत्रु शत्रुका जितना अनिष्ट नहीं कर सकता, कुपथगामी मन मनुष्यका उससे भी अधिक अनिष्ट करता है।

१७-मधुमक्षिका जैसे पुष्पके सौन्दर्य अथवा सुगन्धका अपचय न करके मधुसंग्रह करती है, तुम भी उसी प्रकार पापमें लिप्त न होकर ज्ञान प्राप्त करो।

१८-यह पुत्र मेरा है, यह ऐश्वर्य मेरा है, अति अज्ञानी लोग भी इस प्रकार चिन्तन करके क्लेश पाते हैं। जब अपना-आप अपना नहीं होता, तब पुत्र और सम्पत्ति किस प्रकार अपने हो सकते हैं?

१९-कम ही लोग भवसागर पार होते हैं, अधिकांश लोग तो धर्मका ढोंग रचकर किनारेपर ही दौड़-धूप करते रहते हैं।

२०-संग्राममें जिसने लाखों मनुष्योंको जीत लिया है, वह मनुष्य वास्तविक विजयी नहीं है। जिसने अपने-आपको जीत लिया है, वही वास्तविक विजयी है।

गोमाताकी स्वामिभक्ति

[नार्मद शिवलिंग और शालग्राम सामान्य पत्थर नहीं, उनमें परब्रह्म परमात्माकी नित्य सन्निधि होती है; गंगामैया नदीमात्र नहीं, जीवोंके उद्धारके लिये ब्रह्मद्रवरूपमें भगवान्‌की करुणाका प्रवाह हैं; संसारको प्राणवायु देनेवाला पीपल सामान्य वृक्ष नहीं, भगवान्‌की विभूति है; ठीक इसी प्रकार गोमाता सामान्य पशु नहीं, भगवान्‌की पोषणात्मिका शक्ति हैं; वे परमात्माकी सृष्टिकी अद्भुत प्राणी हैं। उनमें मनुष्यसे भी उच्च स्तरकी संवेदनाके दर्शन होते हैं। सरलताकी प्रतिमूर्ति होते हुए भी वे अपने स्वामी (पालनकर्ता)-पर संकट देखकर उसकी रक्षा करनेके लिये प्रलयंकारी स्वरूप धारण कर लेती हैं। यहाँ उनकी स्वामिभक्तिको निरूपित करनेवाली घटना दी जा रही है—सम्पादक]

यह घटना बीकानेर (राजस्थान)-की नोखा तहसीलके गाँव सूरपुराकी है। इस घटनासे यह प्रमाणित होता है कि गाय सामान्य पशु नहीं, साक्षात् जननी है, उसमें अपने पालनकर्ताके प्रति अद्भुत प्रेम होता है और उसके अनिष्टकी आशंका अत्यन्त शान्त रहनेवाली गोमाताको प्रलयकारिणी बना देती है। घटना इस प्रकार है—

श्रीहरिराम सिहोल (जाट) पुत्र श्रीपूसाराम जाटकी गायें नित्यकी भाँति उसके साथ खेतपर गयी हुई थीं, परंतु थोड़ी ही देर बाद उनमेंसे एक गाय जोर-जोरसे रँभाती हुई घर वापस लौट आयी। हरिरामकी बेटी विमलाने जब अपनी गायको असमय लौटा देखा और उसकी करुण रँभाहट सुनी, तो वह जल्दीसे बाहर निकली। बाहर निकलकर उसने देखा कि उसकी लाल गाय जोर-जोरसे रँभाकर जैसे कुछ अनहोनी होनेकी खबर देना चाहती हो! तबतक विमलाकी माँ भी बाहर निकल आयी। दोनोंको बाहर निकला देख गाय वापस चल पड़ी! दोनोंने गायके जानेकी दिशामें जब देखा, तो खौफनाक मंजर देख घबरा गयीं।

गाय वापस चली आ रही थी और पीछे-पीछे हरिराम अपना खून बहता हाथ पकड़े आ रहा था!

पास आकर पूछनेपर हरिरामने बताया कि आज ये गायमाता ना होतीं, तो मेरे प्राण बचने मुश्किल थे! हरिरामने जो कुछ बताया, वह कुछ इस प्रकार था—

अपने खेतके खर-पतवारको निकालकर हरिराम अपनी गायोंको खिला रहा था। गायोंको खिलानेके बाद पास ही 'खेजड़ी' से बँधी ऊँटनीको जब खिलाने लगा, तो अचानक ऊँटनीने हरिरामकी बाँहको अपने मुँहमें दबा लिया और उसे ऊपर उठा लिया। अपनेको छुड़ानेकी चेष्टामें हरिराम लगभग लटक-सा गया और ऊँटनी हरिरामको 'खेजड़ी' से टकराने लगी! ऊँटनीके दाँतों और पेड़की चोटसे हरिरामकी चीखें निकलने लगीं।

थोड़ी ही देर पहले, जिन्हें हरिरामने घास खिलायी थी, वे गायें कुछ ही दूरीपर खड़ी थीं। हरिरामके चिल्लानेकी आवाजपर और खौफनाक नजारा देखकर उनमेंसे एक गाय तुरन्त घटनास्थलकी तरफ दौड़ पड़ी।

दौड़ते हुए आकर उसने अपनी सींगोंसे ऊँटनीके पेटमें जोरसे टक्कर मारी। चोटके दर्दसे ऊँटनीके डकारनेपर हरिराम उसके मुँहसे जमीनपर गिर पड़ा। गिरे हुए हरिरामको गायने अपने चारों पाँवोंके सुरक्षित घेरेमें ले लिया!

जब हरिराम कुछ सोचनेकी स्थितिमें आया, तो गायको अपने ऊपर खड़ी देख घबरा-सा गया, पर ज्यों ही हरिरामने अपना सर थोड़ा-सा ऊँचा किया, गाय दो कदम पीछे हट गयी! गायको पीछे हटा देख हरिराम धीरेसे उठकर अपनी झोंपड़ीकी तरफ चल पड़ा, गाय भी सूँघते हुए उसके पीछे-पीछे चल पड़ी!

गाय हरिरामसे कुछ पहले ही लगभग दौड़ती हुई झोंपड़ीके पास जाकर जोर-जोरसे रँभाने लगी! रँभाहटकी आवाजपर हरिरामकी बेटी विमला बाहर निकल गायको देखकर सोचने लगी, आज ये समयसे पहले क्यों आ गयी, तबतक विमलाकी माँ भी निकल आयी!

दोनोंको बाहर निकली देख, गाय वापस हरिरामकी दिशामें चल पड़ी…।

हरिरामकी मरहम-पट्टी करायी गयी और गायको उसके स्थानपर बाँध दिया गया! अगले दिनसे गायको खूँटेसे खोलते ही वह पहले हरिरामकी चारपाईके पास आती, हरिरामको देखती, सूँघती; फिर चरने बाहर जाती! यह है गोमाताकी अद्भुत संवेदनशीलता, स्वामिभक्ति और परदुःखकारता, जो आजके मनुष्योंके लिये भी आदर्श है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

कुछ आध्यात्मिक प्रश्न

सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला, धन्यवाद। उत्तरमें कुछ विलम्ब हो गया है, कृपया क्षमा करेंगे। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१—४. जिसकी सहायतासे कार्य किया जाय, उसे करण कहते हैं। क्रियाकी सिद्धिमें अत्यन्त उपकारक वस्तुका नाम करण है। जैसे लोहार कर्ता है तो औजार उसका करण है। कर्ता और करणसे भौतिक जगत्‌का कार्य चलता है। आध्यात्मिक जगत्‌में भी कर्ता और करणसे ही सब कार्य होते हैं। यहाँ कर्ता जीवात्मा है और करण इन्द्रियाँ। जैसे देखनेकी क्रिया करते समय द्रष्टा तो जीवात्मा है और उसके दर्शनरूप कार्यमें सहायता देनेवाला करण है नेत्र। इसी प्रकार सुनने, बोलने, चलने आदिमें भी कर्ता जीवात्मा है और श्रवण, वाक् तथा पाद आदि इन्द्रियाँ करण हैं। इनके दो भेद हैं—कर्म-इन्द्रिय और ज्ञान-इन्द्रिय। जिनसे स्थूल क्रियामात्र होती है, वे कर्मेन्द्रिय हैं, जैसे—हाथ, पैर, गुदा, लिंग और वाक्। जिनसे कुछ ज्ञान होता है, वे ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जैसे—नेत्र, रसना, घ्राण, श्रवण, त्वचा। इनके द्वारा रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शका अनुभव होता है। इन करणोंके भी दो भेद हैं—बाह्यकरण और अन्तःकरण। पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—ये बाह्यकरण हैं; क्योंकि इनसे बाहरकी क्रिया तथा बाहरके ही विषयोंका अनुभव होता है। जिस इन्द्रियसे भीतर-ही-भीतर अनुभव तथा मनन आदिकी क्रिया हो—उसे अन्तःकरण कहते हैं। इसके चार भेद हैं—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। किसी वस्तुको देखने, सुनने अथवा पढ़नेके बाद जो मननकी क्रिया होती है, उसका करण 'मन' है। इसे संकल्प और विकल्पका भी आधार माना गया है। सन्देह, संशय आदि भाव मनमें ही उठते हैं। मनके ऊपर बुद्धि है, इसके द्वारा पदार्थका निश्चयात्मक ज्ञान होता है। मनका स्वभाव सन्देह—संकल्प-विकल्प करना है और बुद्धिका काम निश्चय करना है। यही मन और बुद्धिमें अन्तर है। मन सन्देहके चक्करमें पड़कर चंचल हो उठता है। उस समय बुद्धि तर्क और युक्तियोंसे विचार करके एक निश्चय उपस्थित करती है। इससे मनका भी संशय मिट जानेसे वह स्थिर हो जाता है। यही बुद्धिके द्वारा मनका संयम है। इसी तरह बुद्धि मनको वशमें करती है; क्योंकि जहाँ मनकी पहुँच नहीं है, वहाँ भी बुद्धि काम करती है। इसीलिये कहा गया है—'**मनसस्तु परा बुद्धिः**।' अन्तःकरणमें जो 'अहम्-अहम्' (मैं-मैं)-का अभिमान उठता है, यही अहंकारकी वृत्ति है। तथा जिस वृत्तिके द्वारा अपने अभीष्टका चिन्तन और स्मरण होता है, उसीका नाम चित्त है। इन चारोंको अन्तःकरण कहते हैं। इसीका नाम हृदय भी है। हृदय वह प्रदेश या स्थल है, जहाँ अन्तःकरणकी ये चारों वृत्तियाँ काम करती हैं। इनका कोई स्थूल रूप नहीं, ये सभी सूक्ष्म वृत्तियाँ हैं। हृदयाकाशमें ही अन्तःकरणका कार्य होता है। हृदयके मध्यभागमें कमलका चिन्तन किया जाता है, उसकी कर्णिकामें इष्टदेवका आसन है, वहीं विराजमान इष्टदेवका चिन्तन या ध्यान किया जाता है। वह कर्णिका चित्त-स्थानमें है। वहीं विज्ञानमय कोष है, जहाँ ज्ञानीलोग ब्रह्मका चिन्तन करते हैं। हृदय और कलेजामें बहुत अन्तर है। हृदय आकाशकी भाँति शून्य है, उसकी वृत्तियाँ सूक्ष्म हैं और कलेजा स्थूल है।

५. अन्तःकरणके तीन दोष हैं—मल, विक्षेप और आवरण। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये निष्काम भावसे शुभ शास्त्रोक्त कर्म करनेसे तथा भगवन्नाम-जप एवं भजन करनेसे मल-दोषका नाश होता है, भगवान्‌का ध्यान करनेसे विक्षेप दूर होता है और महापुरुषोंका सत्संग करनेसे भगवत्तत्त्वका ज्ञान होकर आवरणकी निवृत्ति होती है। भगवान्‌के नामका जप, भगवान्‌का ध्यान, सत्संग और भगवान्‌के तत्त्वका चिन्तन—ये सब अन्तःकरणकी शुद्धिके उपाय हैं। शेष सब भगवान्‌की दया!

(२)
ईश्वरको कैसे पुकारें?

सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। उत्तर देनेमें बहुत विलम्ब हो गया। कृपया क्षमा करेंगे।

ईश्वरके विरहमें रुदन स्वभावतः होना चाहिये। रोना और हँसना सीखना नहीं पड़ता। अत्यन्त प्रियके विछोहका अनुभव प्राणोंको बरबस रुला देता है। अभी तो हमने संसारके सगे-सम्बन्धियोंको ही प्रिय मान रखा है। धन और भोगोंके प्रति ही हमारा अधिक आकर्षण है। ऐसी दशामें भगवान्‌के लिये हम व्याकुल कैसे हो सकते हैं? हम जानते हैं और सदा देखते हैं कि धन और भोग क्षणभंगुर हैं—आज हैं, कल नहीं। इसी प्रकार यहाँके सगे-सम्बन्धी, यहाँतक कि यह शरीर भी मृत्युके बाद साथ नहीं देता। सब यहीं रह जाते हैं। जीवको अकेला ही जाना पड़ता है। उस समय भी जीवके नित्य सहचर भगवान् उसके साथ रहते हैं। प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्थामें यदि कोई साथ देता है तो वे हैं परम करुणामय भगवान्। वे सबके घट-घटमें विराज रहे हैं। उनकी दया इतनी है कि वे सबको अपनी शरणमें आनेके लिये स्वयं पुकार रहे हैं, सबको पापों और दुःखोंसे छुटकारा दिलानेकी सान्त्वना दे रहे हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

एक हम हैं जो भगवान्‌को पुकारना, उनके लिये रोना तो दूर रहा, उनके प्रिय आह्वानतकको नहीं सुनते या सुनकर भी अनसुना कर देते हैं। जो हमारे आत्माके भी आत्मा हैं, प्राणोंके भी प्राण हैं, जिनसे बढ़कर कोई प्रियतम नहीं है, वे हमसे दूर नहीं हैं। हम उन्हें प्राणमें भी निहार न सकें, अपने प्रेमाश्रुओंसे उनके चरणोंको पखार न सकें—यह कितने दुःखकी बात है। उन्होंने गोपियोंको भी विरह दिया था, इसलिये कि मुझमें उनका निरन्तर प्रेम बढ़ता रहे। हमें भी यह विरह इसलिये मिला है कि हम प्रभुसे मिलनेके लिये रोयें, तड़पें, अश्रुओंके मौक्तिक हारसे उनकी सादर अर्चना करें और पुकारकर कहें—

परमकारुणिको न भवत्परः
परमशोच्यतमो न हि मत्परः।
इति विचिन्त्य हरे मयि पामरे
यदुचितं यदुनाथ तदाचर॥

'हे हरे! आपसे बढ़कर कोई परम दयालु नहीं है, और मुझसे बढ़कर कोई शोचनीय नहीं है। यदुनाथ! ऐसा समझकर मुझ पामरके लिये जो उचित हो, वह कीजिये।'

दीर्घाण्यघान्यधिशुचीव भवन्त्यहानि
हानिर्बलस्य शरदीव नदीजलस्य।
दुःखान्यसत्परिभवा इव दुःसहानि
हा! निःसहोऽस्मि कुरु निःशरणेऽनुकम्पाम्॥

'भगवन्! आषाढ़मासके दिनकी भाँति मेरे पाप बढ़ते चले जाते हैं, शरद् ऋतुकी नदीके जलकी तरह शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही है, दुष्टोंद्वारा किये हुए अपमानके समान दुःख मेरे लिये दुःसह हो गये हैं। हाय! मैं सब तरहसे असमर्थ हूँ, अशरण हूँ; दयामय! मुझपर कृपा कीजिये।'

अज्ञस्तावदहं न मन्दधिषणः कर्तुं मनोहारिणी-
श्चाटूक्तीःप्रभवामि यामि भवतो याभिः कृपापात्रताम्।
आर्तेनाशरणेन किन्तु कृपणेनाक्रन्दितं कर्णयोः
कृत्वा सत्वरमेहि देहि चरणं मूर्धन्यधन्यस्य मे॥

'स्वामिन्! मैं अज्ञानी हूँ, मेरी बुद्धि मन्द है; अतः मैं वैसी मनोहारिणी चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं कर सकता, जिनसे आपका कृपापात्र बन सकूँ। मैं तो आर्त हूँ, अशरण हूँ और दीन हूँ; मैंने केवल क्रन्दन किया है। आप इस क्रन्दनपर ही ध्यान देकर शीघ्र दर्शन दीजिये और मुझ भाग्यहीनके मस्तकपर अपने चरण रखिये।'

शरणमसि हरे प्रभो मुरारे
जय मधुसूदन वासुदेव विष्णो।
निरवधिकलुषौघकारिणं मां
गतिरहितं जगदीश रक्ष रक्ष॥

'हरे! मुरारे! प्रभो! एकमात्र आप ही मेरे आश्रय हैं! मधुसुदन! वासुदेव! विष्णो! आपकी जय हो। नाथ! मुझसे निरन्तर असंख्य पाप होते रहते हैं, मुझे कहीं भी गति नहीं है। जगदीश! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार सच्चे मनसे रोकर, कातर पुकार करनेसे मंगलमय भगवान् अवश्य सुनते हैं। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १। ४४ बजेतक	रवि	अनुराधा रात्रिमें २। ३१ बजेतक	१९ मई	मूल रात्रिमें २। ३१ बजेसे।
द्वितीया " १। ३३ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " ३। ४ बजेतक	२० "	धनुराशि रात्रिमें ३। ४ बजेसे।
तृतीया " १। ५२ बजेतक	मंगल	मूल रात्रिशेष ४। ७ बजेतक	२१ "	भद्रा दिनमें १। ४२ बजेसे रात्रिमें १। ५२ बजेतक, मूल रात्रिशेष ४। ७ बजेतक, सायन मिथुनका सूर्य सायं ४। ५५ बजे।
चतुर्थी " २। ४३ बजेतक	बुध	पू०षा० अहोरात्र	२२ "	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ५६ बजे।
पंचमी रात्रिशेष ४। ० बजेतक	गुरु	पू०षा० प्रातः ५। ३८ बजेतक	२३ "	मकरराशि दिनमें १२। ८ बजेसे।
षष्ठी अहोरात्र	शुक्र	उ०षा० दिनमें ७। ३८ बजेतक	२४ "	× × × × ×
षष्ठी प्रातः ५। ४० बजेतक	शनि	श्रावण " ९। ५६ बजेतक	२५ "	भद्रा प्रातः ५। ४० बजेसे सायं ६। ३९ बजेतक, कुम्भराशि रात्रिमें ११। १३ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ११। १३ बजे, रोहिणीका सूर्य रात्रिमें १२। ५२ बजे।
सप्तमी दिनमें ७। ३७ बजेतक	रवि	धनिष्ठा " १२। ३० बजेतक	२६ "	× × × × ×
अष्टमी " ९। ३९ बजेतक	सोम	शतभिषा " ३। ७ बजेतक	२७ "	श्रीशीतलाष्टमीव्रत।
नवमी " ११। ३८ बजेतक	मंगल	पू०भा० सायं ५। ४० बजेतक	२८ "	मीनराशि दिनमें ११। २ बजेसे, भद्रा रात्रिमें १२। ३१ बजेसे।
दशमी " १। २३ बजेतक	बुध	उ०भा० रात्रिमें ७। ५७ बजेतक	२९ "	भद्रा दिनमें १। २३ बजेतक, मूल रात्रिमें ७। ५७ बजेसे।
एकादशी " २। ४५ बजेतक	गुरु	रेवती " ९। ५१ बजेतक	३० "	अचला एकादशीव्रत (सबका), मेषराशि रात्रिमें ९। ५१ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ९। ५१ बजे।
द्वादशी " ३। ४१ बजेतक	शुक्र	अश्वनी " ११। २० बजेतक	३१ "	प्रदोषव्रत, मूल रात्रिमें ११। २० बजेतक।
त्रयोदशी " ४। ९ बजेतक	शनि	भरणी " १२। १८ बजेतक	१ जून	भद्रा दिनमें ४। ९ बजेसे रात्रिशेष ४। ७ बजेतक।
चतुर्दशी " ४। ५ बजेतक	रवि	कृत्तिका " १२। ४६ बजेतक	२ "	वृषराशि प्रातः ६। २६ बजेसे।
अमावस्या " ३। ३१ बजेतक	सोम	रोहिणी " १२। ४५ बजेतक	३ "	वटसावित्रीव्रत, अमावस्या (सोमवती)

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २। २७ बजेतक	मंगल	मृगशिरा रात्रिमें १२। १५ बजेतक	४ जून	मिथुनराशि दिनमें १२। २९ बजेसे।
द्वितीया " १। ० बजेतक	बुध	आर्द्रा " ११। २७ बजेतक	५ "	रम्भाव्रत।
तृतीया " ११। ११ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु " १०। १७ बजेतक	६ "	भद्रा रात्रिमें १०। ९ बजेसे, कर्कराशि दिनमें ४। ३४ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी " ९। ६ बजेतक	शुक्र	पुष्य " ८। ५३ बजेतक	७ "	भद्रा दिनमें ९। ०६ बजेतक, मूल रात्रिमें ८। ५३ बजेसे।
पंचमी प्रातः ६। ४९ बजेतक	शनि	आश्लेषा " ७। १९ बजेतक	८ "	सिंहराशि रात्रिमें ७। १९ बजेसे, मृगशिराका सूर्य रात्रिमें १२। ११ बजे।
सप्तमी रात्रिमें १। ५४ बजेतक	रवि	मघा सायं ५। ३८ बजेतक	९ "	भद्रा रात्रिमें १। ५४ बजेसे, मूल सायं ५। ३८ बजेतक, भानुसप्तमी।
अष्टमी " ११। २८ बजेतक	सोम	पू०फा० दिनमें ४। ० बजेतक	१० "	भद्रा दिनमें १२। ४१ बजेतक, कन्याराशि रात्रिमें ९। ३६ बजेसे।
नवमी " ९। ८ बजेतक	मंगल	उ०फा० दिनमें २। २४ बजेतक	११ "	× × × × ×
दशमी सायं ६। ५७ बजेतक	बुध	हस्त " १२। ५८ बजेतक	१२ "	तुलाराशि रात्रिमें १२। २३ बजेसे, श्रीगंगादशहरा।
एकादशी " ५। २ बजेतक	गुरु	चित्रा " ११। ४७ बजेतक	१३ "	भद्रा प्रातः ६। ० बजसे सायं ५। २ बजेतक, निर्जला (भीमसेनी) एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी दिनमें ३। २८ बजेतक	शुक्र	स्वाती " १०। ५७ बजेतक	१४ "	वृश्चिकराशि रात्रिशेष ४। ३५ बजेसे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " २। १७ बजेतक	शनि	विशाखा " १०। २७ बजेतक	१५ "	मिथुन संक्रान्ति रात्रिमें १२। २६ बजे।
चतुर्दशी " १। ३४ बजेतक	रवि	अनुराधा " १०। २३ बजेतक	१६ "	भद्रा दिनमें १। ३४ बजेसे रात्रिमें १। २७ बजेतक, व्रत पूर्णिमा, मूल दिनमें १०। २३ बजेसे।
पूर्णिमा " १। १९ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " १०। ४८ बजेतक	१७ "	धनुराशि दिनमें १०। ४८ बजेसे, पूर्णिमा।

कृपानुभूति

ईश्वरीय कृपाकी कुछ घटनाएँ

(१) असाध्य रोगसे रक्षा

मेरी माताजी उन दिनों एक असाध्य रोगसे पीड़ित थीं। डॉक्टर, हकीम और वैद्य सबका इलाज करा चुके थे, पर कुछ लाभ न हुआ। रोग दिन-दिन बढ़ता ही गया। पिताजी और मैं केवल भगवान्‌के आसरे ही रह गये। हमने एक पण्डितजीसे महामृत्युंजयका अखण्ड पाठ कराया और स्वयं भी रामनामकी माला जपनी शुरू की। परमेश्वरने हमारी प्रार्थना सुन ली। माताजीको धीरे-धीरे स्वास्थ्य-लाभ होने लगा और थोड़े ही दिनोंमें वे पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो गयीं।

(२) बाढ़से रक्षा

राजस्थानके दक्षिणी भागमें सन् १९७० ई० में बहुत वर्षा हुई थी। चितौड़गढ़ नगर तथा स्टेशनके बीच बहनेवाली गम्भीरी नदीमें बाढ़ आ गयी। नदीने रौद्र रूप धारण कर लिया। तटके समीपके लोग घर-द्वार छोड़कर दुर्गमें शरण लेने चले गये। उस समय कुछ लोगोंकी सलाहसे नदीके तटपर कीर्तन किया गया। ब्राह्मणोंने वेद मन्त्रोंसे इन्द्रदेवकी स्तुति की। जैसे ही प्रार्थना पूरी हुई, नदीके जलका स्तर गिरने लगा। बाढ़ शीघ्र ही उतर गयी।

(३) दुर्घटनासे रक्षा

सन् १९६२ ई० की घटना है, उन दिनों मेरे ज्येष्ठ भ्राता सवाई माधोपुर (राजस्थान)-में मुन्सिफ मजिस्ट्रेटके पदपर नियुक्त थे। उसी वर्ष लोकसभाके चुनाव भी थे। उन्हें सरकारी आदेशसे कई मतगणना-केन्द्रोंका निरीक्षण करना था। एक दिन वे एक मतगणना-केन्द्रका निरीक्षण करके दूसरे गाँव जा रहे थे। रास्ता विकट था, मार्गमें अँधेरा हो गया। वर्षा हो जानेके कारण मार्गमें कीचड़ भी था। भाई साहबकी जीप ५-७ व्यक्तियोंको लेकर तेज गतिसे दौड़ रही थी। रास्तेमें अचानक जीपका टायर फट गया और वह रुक गयी। सबने नीचे उतरकर देखा तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि जहाँ जीप रुकी थी, उससे २-३ मीटर आगे सड़कसे लगता कुआँ था। यदि जीप चलती रहती तो अवश्य कुएँमें गिरती। ईश्वरकी कृपासे ही टायर फटा था और भयंकर दुर्घटना होते-होते बची। धन्य है प्रभुकी माया!

(४) जाको राखै साइयाँ मार सके न कोय

कोटा (राजस्थान)-के पास एक गाँवमें एक परिवार कच्चे मकानमें रहता था। बरसातके दिनोंमें भयंकर वृष्टि हुई, कच्चा मकान ढह गया। दिनका समय था। परिवारके व्यक्ति मकानके बाहर काम कर रहे थे। वे बच गये, पर एक तीन वर्षीय बच्चा मकानके मलबेमें दब गया। जब मलबा हटाया गया तो यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि दो पट्टियोंके बीच बालक जीवित मिला। पट्टियाँ एक-दूसरेसे सटकर इस प्रकार खड़ी थीं कि बच्चेका शरीर सकुशल रह सके। इस प्रकार भगवान्‌की असीम कृपासे अबोध शिशुकी रक्षा हुई।

(५) अकाल मृत्युसे रक्षा

दिनांक ४ अगस्त सन् २००२ ई० (अमावस्या, सम्वत् २०५९) गुरुवारको मैं सुबह पूजाका आवश्यक सामान लेने बाजार गया। वापस ११ बजेके लगभग लौटा। मैं अपना लेखन-कार्य मकानके ऊपरवाले कक्षमें करता हूँ। वहाँ ही मेरी लाइब्रेरी एवं लेखन-सामग्री है; क्योंकि वह एकान्त, हवादार और बड़ा कक्ष है। बरसातके दिन थे। ऊपर गया तो देखा कि छतका प्लास्टर टूटकर मेरी कुर्सी और टेबिलपर पड़ा था। लगभग ५०-६० किलो चूने एवं रेतका वह ठोस मिश्रण पत्थर-जैसा था। यदि उस समय मैं बैठा रहता तो क्या होता? शायद अकालमें ही मृत्युदेवीकी गोदमें समा जाता या सिर, हाथ-पैरोंकी हड्डियाँ तुड़वाकर अस्पतालमें भर्ती होता। ईश्वरकी अनुकम्पाने ही मुझे उस दिन बचाया। इस प्रकार और भी कई दुर्घटनाओंसे मैं बच निकला हूँ। यह सब उस जगन्नियन्ताकी असीम कृपाका ही फल है।

—डॉ० श्याम मनोहर व्यास

पढ़ो, समझो और करो

(१)

जैसा बीज, वैसा फल

बात पुरानी है—बाबू कालीचरन उत्तरप्रदेशके एक अच्छे जमींदार थे, अच्छी आमदनी थी। वे गाँवमें न रहकर अकसर शहरमें रहते थे। उन्होंने एक मकान बनवा लिया था, पर वह छोटा था। बाबू उसे बढ़ाना चाहते थे और खुली जमीनमें बगीचा लगवानेकी उनकी इच्छा थी। उनके बगलमें एक गरीब अहीरका घर था। घरके लोग मर गये थे। एक बूढ़ी स्त्री और उसका छोटा-सा पोता था, लगभग बारह वर्षका। वह साग-सब्जी पैदा करके उससे अपना पेट पालती थी। कालीचरनने उसकी जमीनको लेना चाहा। उसको पता लगा तो एक दिन आकर वह कालीचरनके चरणोंपर गिर गयी और रोती हुई बोली—'सरकार! आपके पड़ोसमें मुझ गरीब बुढ़िया और अनाथ बच्चेको जहाँ सहायता मिलनी चाहिये, वहाँ आप हमारे पुरखोंकी यह छोटी-सी झोंपड़ी भी उजाड़ देना चाहते हैं? यह मत कीजिये। आपको भगवान्‌ने लक्ष्मी दी है, आप चाहे जहाँ चाहे जितनी जमीन खरीद सकते हैं, मुझे तो यहीं पड़ी रहने दीजिये। मैं सदा आपको आशीर्वाद दूँगी।'

कालीचरन बिगड़ उठे, कड़ककर बोले—'तुमलोग सीधी बातसे माननेवाले नहीं हो, थानेके सिपाही हाथ पकड़कर निकालेंगे तब मानोगे। तुम्हारी झोंपड़ीकी रक्षा होगी और मेरा मकान नहीं बनेगा। यह हरगिज नहीं होगा। तुम्हें सौ-पचास रुपये चाहिये तो ले लो; नहीं तो रुपये भी नहीं मिलेंगे और जमीन तो छोड़नी ही पड़ेगी।' बुढ़ियाको बड़ी निराशा हुई और साथ ही बाप-दादोंकी जमीन जबरदस्ती छिन जानेकी बातसे उसे गुस्सा भी आ गया। उसने कहा—'बाबूजी! अनीतिका फल अच्छा नहीं होता। भगवान् इसे नहीं सहेगा। तुम मेरी मढ़ैया उजाड़ोगे तो तुम्हारा महल भी मटियामेट हो जायगा। मैं जाती हूँ। रोऊँगी भगवान्‌के सामने जिनका कोमल हृदय है। तुम तो वज्रके बने स्वार्थी हो।' यह सुनकर बाबू कालीचरनका पारा बहुत चढ़ गया। उन्होंने कहा—'बड़ी भगवान्‌की भगत आयी है—मानो भगवान् तेरे ही हाथकी कठपुतली हैं, और होंगे भी तो क्या है। मैं भगवान्-वगवान् कुछ नहीं मानता। कल ही निकालकर छोड़ूँगा। देखूँगा, तेरे भगवान् क्या करते हैं—चल निकल यहाँसे।' बुढ़िया उठी और यह कहती हुई—'अरे! हिरनाकुसने भी यही कहा था! मैं भगवान्‌को नहीं मानता, उसकी क्या दशा हुई थी।....' चली गयी।

जमींदार समर्थ था। पुलिसके अधिकारी उसके हाथमें थे। उसने दूसरे ही दिन षड्यन्त्र करके रोती हुई बुढ़ियाको उसके नातीसहित घरसे निकलवा दिया और जमीनपर कब्जा कर लिया। बुढ़िया रोती-चिल्लाती बच्चेको लेकर चली गयी। कुछ लोगोंने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए कालीचरनकी करतूतको बुरा भी बताया, पर इससे क्या होता था?

कालीचरनका मकान बड़ा बन गया, बगीचा भी लग गया, पर तीसरे ही वर्ष जोरका प्लेग फैला और कालीचरनका जवान लड़का और उसकी माता सहसा उसके शिकार हो गये। इन दोनोंने भी कालीचरनको बहुत उकसाया था। साथ ही, कालीचरनपर एक पुराने मामलेमें डिक्री होकर उसके मकानपर कुर्की आ गयी। सारा ही दृश्य बदल गया। कालीचरन स्त्री-पुत्र-मकान सब खोकर राहका कंगाल हो गया। 'इस हाथ दे उस हाथ ले।' जैसा बीज वैसा ही फल।—सिवदीन मिसिर

(२)

कृतज्ञता-ईमानदारी और कृतघ्नता-बेईमानी

गणेशदासजी राजस्थानके निवासी थे। आसामके एक गाँवमें उनकी कपड़े, गल्ले, किरानेकी दूकान थी। काम कुछ चलने लगा। तब वे देशसे रामकुमार नामक अपने एक गरीब सम्बन्धीको मुनीमके रूपमें ले गये। उसको पाला-पोसा, काम सिखाया, काम सौंपा। इन्हींके

साथ एक साँवलराम नामक गरीब ब्राह्मण भी गये। गणेशदासजीने अपने छोटे-से भगवान्‌के मन्दिर (ठाकुरवाड़ी)-में साँवलरामको पुजारी नियुक्त कर दिया। इसके सिवा बरनी, पाठ-पूजा आदि करके भी वे कुछ कमाने लगे, पर साँवलराम रहते थे गणेशदासजीके गोलेमें ही तथा वहीं खाते भी थे। कुछ समय बाद साँवलरामने अपनी पत्नीको भी बुला लिया। गाँवमें राजस्थानियोंके कई परिवार रहते थे। नयी बहीका पूजन, पूजापाठ, व्रत-त्योहार, रामनवमी-दीवाली आदिके काम रहते थे ही। वहाँ और कोई पण्डित था नहीं। सभी कामोंमें साँवलरामजीकी माँग रहती। वे अच्छी तरह कमाने-खाने लगे। रुपये जुड़ने लगे। जब वे गणेशदासजीके साथ आये थे, तब भी और उनकी स्त्रीके आनेके बहुत दिनों बादतक भी उनकी हालत बहुत गरीबीकी ही थी। गणेशदासजीकी पत्नी और गणेशदासजी उनकी हर तरहसे सहायता करते। लड़कीका विवाह भी करा दिया था उन्होंने ही। इधर पं० साँवलरामजी भी गणेशदासजीके लिये अपना जीवन देनेको तैयार रहते।

दूकानका सारा काम अब रामकुमार सँभालने लगा। उसका परिवार भी वहाँ आ गया। कुछ वर्षोंके बाद रामकुमारकी नीयत बिगड़ी। उसने दूकानमें चोरी आरम्भ की। दूकानका सामान अपने घर ले जाता, माल बेचकर रुपये अपनी जेबमें डाल लेता। धीरे-धीरे इस बातका साँवलरामजीको पता लग गया। उन्होंने रामकुमारको समझाकर कहा कि 'यों चोरी तथा नमकहरामी करना ठीक नहीं, इससे बड़ा पाप होता है।' पर पैसेका लोभ मनुष्यके विवेकको नष्ट कर देता है। 'चोर धर्मकी बात क्यों सुनने लगा।' रामकुमारने उनकी बात नहीं सुनी। बल्कि साँवलरामको भी कुछ हिस्सा देनेका प्रस्ताव किया। साँवलराम ईमानदार थे, सच्चे थे। उन्होंने उस प्रस्तावको ठुकरा ही नहीं दिया, रामकुमारको समझाया भी, पर वह नहीं माना। उलटे साँवलरामसे वैर मानने लगा और गणेशदासजीसे साँवलरामजीके चरित्र, आचरण, व्यवहार आदिके सम्बन्धमें झूठी-झूठी शिकायतें—'यह व्यभिचारी है, चोर है, मैं समझाता हूँ तो मुझसे बुरा मानता है।' आदि कह-कहकर उनका मन खराब करने लगा।

रामकुमारकी चोरी खुले हाथों चलने लगी। बेईमानी बेहद बढ़ती गयी। वह बड़ी तेजीसे अपना घर बनाने लगा। गणेशदासजीकी हानिका उसके मनमें कोई विचार ही नहीं रहा। साँवलरामजीसे यह नहीं सहा गया। उन्होंने गणेशदासजीको एक दिन सब बातें संक्षेपमें कहीं। गणेशदासजीका मन पहलेसे खराब तो था, पर उन्होंने रामकुमारसे इसके बाबत पूछा। रामकुमारने साँवलरामजीके सम्बन्धमें जली-कटी बातें सुनाकर उनसे कहा—'मैंने तो पहले ही कहा था कि साँवलराम अब पहले-जैसा गरीब ब्राह्मण नहीं रहा है—यह आपका बुरा चाहता और बुरा ही करता है। मुझसे वैर मानता है, इसीसे मेरे बारेमें झूठी बातें बना-बनाकर उसने आपसे कही है।' यों कहकर वह झूठमूठ रोने लगा और अपना विश्वास जमानेके लिये गणेशदासके पैर पकड़कर बोला—'आप मालिक हैं, जचे सो कीजिये, पर मुझसे आपका अनिष्ट देखा नहीं जाता, इसीसे रोकर आपसे यह कहता हूँ कि आप अपना भला चाहते हैं तो साँवलरामको तुरंत निकाल देना चाहिये।'

सेठ गणेशदासपर रामकुमारके रोनेका बड़ा असर पड़ा। उन्होंने साँवलरामजीको बुलाकर उनका तिरस्कार किया और घरसे निकल जानेको कह दिया। उनकी पत्नी चन्दाने रोका-टोका भी, पर उस समय गणेशदासजी क्रोधमें थे, बुद्धि मारी गयी थी, इससे वे नहीं माने। साँवलराम अपना सामान तथा रोती हुई पत्नीको लेकर चल दिये और एक दूसरे दूकानदार हरनारायणके घर जाकर रह गये। वह इनसे बहुत प्रेम करता था।

× × ×

कुछ समय बाद पासा पलटा। रामकुमारकी बेईमानी तथा अन्यायाचरणसे गणेशदासजीकी दूकानका बुरा हाल हो गया। एक दूसरे व्यापारी बजरंगलालसे, जो गुण्डा स्वभावका था और गणेशदाससे द्वेष रखता था,

साजिश करके रामकुमारने गणेशदासकी फर्मके नामसे तीन साल पहलेकी तारीखमें पन्द्रह हजारका उधार रुपये लेनेका हैंडनोट लिख दिया—कह दिया कि 'डिक्री होनेपर रुपये वसूल होंगे तब आधे-आधे बाँट लिये जायँगे।' नालिश हो गयी। रामकुमारको सब प्रकारकी सही करनेका हक था। उसने साक्षी दे दी कि 'रुपये फर्मके कामसे लिये गये थे, मेरे हस्ताक्षर हैं।' हाकिमको भी किसी तरह पक्षमें कर लिया गया। डिक्री हो गयी। मालताल तो कुछ था नहीं, जमीन-गोला था और कुछ गहना था। उसपर कुर्कीकी नोटिस आ गयी। गाँवभरमें तरह-तरहकी पक्ष-विपक्षकी चर्चा फैल गयी। रामकुमारकी नीचता सीमा पार कर गयी।

कुर्की आनेवाली थी, उसके पहले दिन रात्रिको साँवलरामजीकी स्त्री—गोदावरी ब्राह्मणी चुपके-से गणेशदासजीकी स्त्री चन्दाबाईके पास पहुँची और पैर पकड़कर रोने लगी। उस समय गणेशदास कुछ व्यवस्था करनेके लिये बाहर गये हुए थे। वे कई दिनोंसे प्रयत्न कर रहे थे कि कहींसे जमीन-गोलेपर कुछ रुपये मिल जायँ तो इज्जत बचे, पर कहीं व्यवस्था हो नहीं पा रही थी। निराश और बड़े दुखी थे। कभी-कभी दोनों स्त्री-पुरुष आत्महत्याकी बात सोचा करते थे। कहा करते—हे प्रभो! *'साँई इतनी बीनती दोनूँ भेला रख। लाज रखे तो जीव रख लज बिन जीव न रख॥'* आज यह आखिरी प्रयास था। सफलता न होगी तो फिर कुछ-न-कुछ किया ही जायगा, यही कहकर वे गये थे।

पण्डितानी गोदावरीको पैर पकड़े रोती देखकर दुखिया चन्दा भी रो पड़ी। धीरजका बाँध टूट गया। इस दुःखके समय गोदावरी आयी तो है, इसी बातपर चन्दाका स्नेह उमड़ आया। वह बोल न सकी। गोदावरीने धीरेसे बगलमेंसे एक पोटली निकाली—उसमें सोनेका छः-सात हजारका गहना था और दस हजारके नोट थे। दस-पन्द्रह वर्षकी साँवलरामकी ब्राह्मण-वृत्तिकी सारी कमाई थी। उसने रखकर हाथ जोड़कर कहा—'मैं कंगालिनी आपका कोई उपकार करने नहीं आयी। आप मेरी माँ हैं, मेरे पतिकी माँ हैं। आपके ही स्नेहसे हमलोगोंका जीवन बना है, हमारे रक्तके कण-कणमें आपका अन्न भरा है। यह जो कुछ है, सब आपका ही है। इसे आप स्वीकार करें।' यों भाँति-भाँतिसे गोदावरी बड़ी नम्रतासे रो-रोकर चन्दासे प्रार्थना कर रही थी और चन्दा उसका उपकार मानती हुई लेनेसे इनकार कर रही थी। इसी बीच गणेशदासजी खाली हाथ उदास लौटे। वे दूर खड़े होकर आँसू पोंछने लगे और सुनने लगे इनकी बातें। गोदावरी कह रही थी—'माँजी! यह सारी रामकुमारकी करतूत है, उसीने हमारे भोले सेठजीको बहकाकर आपके बेटे (साँवलराम)-को घरसे निकलवाया, उसने बेईमानीसे अपना घर बनाया और उसीने षड्यन्त्र करके यह विपत्ति बुलवायी, पर आप उसपर क्षमा करें और मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करें।' सुनकर गणेशदास दंग रह गये। अपनी भूलपर पश्चात्तापकी आग जल उठी। वे तुरंत सामने आ गये। श्रीसाँवलरामजीको बुलाया गया। सारा भेद खुला। सबेरे रुपये कोर्टमें भरकर वकीलोंकी सलाहसे बजरंगलाल और रामकुमारपर फौजदारी मामला दायर कर दिया और मामलेके फैसला न होनेतकके लिये कोर्टमें दरखास्त देकर बजरंगलालको रुपये न देनेका आदेश प्राप्त कर लिया। कोर्टमें केस चलनेपर सच्ची बातें सामने आ गयीं। बजरंगलाल और रामकुमारको कड़ी कैदकी सजा हुई। रुपये गणेशदासको वापस मिल गये। सबकी सहानुभूति बढ़ गयी। दूकान फिर चल निकली। गणेशदास सुखी हो गये। साँवलराम और उनकी पत्नी फिर घरमें आ गये। उनके प्रति गणेशदासका जीवन कृतज्ञतासे भर गया।

ये दो सच्चे चित्र हैं। एक—कृतज्ञता, ईमानदारी और भलाईका, दैवी भावका; दूसरा—कृतघ्नता, बेईमानी और बुराईका, आसुरी सम्पत्तिका।

सोचिये—और जीवनमें दैवी सम्पत्तिके चित्रको चरित्ररूपसे उतारिये।—बालमुकुन्द सोनी

मनन करने योग्य

महापुरुषोंके अपमानसे विपत्ति

प्राचीनकालकी बात है, दम्भोद्भव नामका एक सार्वभौम राजा था। वह महारथी सम्राट् नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे पूछा करता था कि 'क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें कोई ऐसा शस्त्रधारी है, जो युद्धमें मेरे समान अथवा मुझसे बढ़कर हो?' इस प्रकार कहते हुए वह राजा अत्यन्त गर्वोन्मत्त होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरता था। राजाका ऐसा घमण्ड देखकर कुछ तपस्वी ब्राह्मणोंने उससे कहा, 'इस पृथ्वीपर ऐसे दो सत्पुरुष हैं, जिन्होंने संग्राममें अनेकोंको परास्त किया है। उनकी बराबरी तुम कभी नहीं कर सकोगे।' इसपर उस राजाने पूछा, 'वे वीर पुरुष कहाँ हैं? उन्होंने कहाँ जन्म लिया है? वे क्या काम करते हैं? और वे कौन हैं?'

ब्राह्मणोंने कहा, 'वे नर और नारायण नामके दो तपस्वी हैं, इस समय वे मनुष्यलोकमें ही आये हुए हैं; तुम उनके साथ युद्ध करो। वे गन्धमादनपर्वतपर बड़ा ही घोर और अवर्णनीय तप कर रहे हैं।'

राजाको यह बात सहन नहीं हुई। वह उसी समय बड़ी भारी सेना सजाकर उनके पास चल दिया और गन्धमादनपर जाकर उनकी खोज करने लगा। थोड़ी ही देरमें उसे वे दोनों मुनि दिखायी दिये। उनके शरीरकी शिराएँतक दीखने लगी थीं। शीत, घाम और वायुको सहन करनेके कारण वे बहुत ही कृश हो गये थे। राजा उनके पास गया और चरणस्पर्शकर उनसे कुशल पूछी। मुनियोंने भी फल, मूल, आसन और जलसे राजाका सत्कार करके पूछा, 'कहिये, हम आपका क्या काम करें?' राजाने उन्हें आरम्भसे ही सब बातें सुनाकर कहा कि 'इस समय मैं आपसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ। यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिलाषा है, इसलिये इसे स्वीकार करके ही आप मेरा आतिथ्य कीजिये।'

नर-नारायणने कहा, 'राजन्! इस आश्रममें क्रोध-लोभ आदि दोष नहीं रह सकते; यहाँ युद्धकी तो कोई बात ही नहीं है, फिर अस्त्र-शस्त्र या कुटिल प्रकृतिके लोग कैसे रह सकते हैं? पृथ्वीपर बहुत-से क्षत्रिय हैं, तुम उनसे युद्धके लिये प्रार्थना करो।' नर-नारायणके इस प्रकार बार-बार समझानेपर भी दम्भोद्भवकी युद्धलिप्सा शान्त न हुई और वह इसके लिये उनसे आग्रह करता ही रहा।

तब भगवान् नरने एक मुट्ठी सींकें लेकर कहा, 'अच्छा, तुम्हें युद्धकी बड़ी लालसा है तो अपने हथियार उठा लो और अपनी सेनाको तैयार करो।' यह सुनकर दम्भोद्भव और उसके सैनिकोंने उनपर बड़े पैने बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया। भगवान् नरने एक सींकको अमोघ अस्त्रके रूपमें परिणत करके छोड़ा। इससे यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि मुनिवर नरने उन सब वीरोंके आँख, नाक और कानोंको सींकोंसे भर दिया। इसी प्रकार सारे आकाशको सफेद सींकोंसे भरा देखकर राजा दम्भोद्भव उनके चरणोंमें गिर पड़ा और 'मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो' इस प्रकार चिल्लाने लगा। तब शरणागतवत्सल नरने
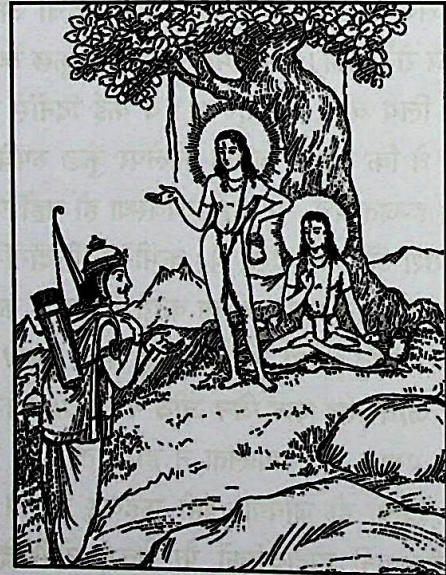
शरणापन्न राजासे कहा, 'राजन्! ऐसा काम फिर कभी मत करना। तुम बुद्धिका आश्रय लो और अहंकारशून्य, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, मृदु और शान्त होकर प्रजाका पालन करो। अब भविष्यमें तुम किसीका अपमान मत करना।'

इसके बाद राजा दम्भोद्भव उन मुनीश्वरोंके चरणोंमें प्रणामकर अपने नगरमें लौट आया। उसका अहंकार नष्ट हो गया और वह सबसे अच्छी तरह धर्मानुकूल व्यवहार करने लगा। [महाभारत-उद्योगपर्व]

नवीन प्रकाशन—इसी माहमें उपलब्धि संभावित

विवाह-संस्कार-पद्धति [पुस्तकाकार, बेड़िआ] (कोड 2191)—शास्त्रोंमें सोलहसे लेकर अड़तालीसतक संस्कार बताये गये हैं, उनमें सोलह संस्कारोंकी विशेष प्रतिष्ठा है। षोडश संस्कारोंमें विवाह-संस्कारका विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत पुस्तकमें विवाहकी सांगोपाङ्ग शास्त्रीय विधि दी गयी है। इसमें मन्त्रभाग संस्कृतमें है तथा उसके साथमें हिन्दीमें निर्देश भी दिये गये हैं; जो प्राय: उत्तर भारतमें प्रचलित पद्धतिके अनुसार हैं। पुस्तकके अन्तमें परिशिष्ट भागमें मांगलिक श्लोकोंको भी दिया गया है। आशा है पाठक महानुभावों, जिज्ञासुजनों तथा कर्मकाण्ड करानेवाले आचार्योंके लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

उपनयन-संस्कार-पद्धति—(वेदारम्भ एवं समावर्तन-संस्कार-पद्धतिसहित) [पुस्तकाकार, बेड़िआ] (कोड 2183)—षोडश संस्कारोंमें उपनयन-संस्कारका भी विशेष महत्त्व है। उपनयनके बिना बालक किसी भी श्रौत-स्मार्त कर्मका अधिकारी नहीं होता। इस पुस्तकमें उपनयनकी शास्त्रीय विधि दी गयी है। इसमें उपनयनके अनन्तर वेदाध्ययन एवं समावर्तन-संस्कारकी प्रक्रिया भी दी गयी है। इसमें मंत्रभाग संस्कृतमें हैं तथा उसके साथमें हिन्दीमें निर्देश भी दे दिये गये हैं।

शिवपुराण-कथासार (शिवमहापुराण—एक सिंहावलोकन) [पुस्तकाकार] (कोड 2189)—अठारह महापुराणोंमें 'शिवमहापुराण'का विशेष गौरव है। भगवत्कृपासे कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें विगत दो वर्षोंमें क्रमश: शिवमहापुराणका हिन्दी भाषानुवाद श्लोकाङ्कके साथ प्रकाशित हुआ है। उन दोनों अंकोंके प्रारम्भमें 'शिवमहापुराण—एक सिंहावलोकन' शीर्षकसे कल्याणके यशस्वी सम्पादक श्रीराधेश्यामजी खेमकाका एक सम्पादकीय आलेख प्रस्तुत हुआ था, जिसमें सम्पूर्ण शिवमहापुराणके कथासारका निरूपण किया गया था। उसी कथासारको प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है।

आशा है, इसके पढ़नेसे सम्पूर्ण शिवमहापुराणके अध्ययनके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो सकेगी तथा यह पुस्तक पाठकोंको इस ओर प्रेरणा प्रदान करनेमें सहायक सिद्ध होगी।

साधन-सुधा-निधि [ग्रन्थाकार] (कोड 2197)—प्रस्तुत पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके अनेक कल्याणकारी पुस्तकोंका संकलन प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें विक्रम-संवत् २०५३ से लेकर २०६४ तक प्रकाशित पुस्तकोंका संकलन किया गया है। आशा है कि साधकगण इस संकलनको पढ़कर लाभान्वित होंगे। इसके पूर्व स्वामीजीके विलक्षण लेखों तथा प्रवचनोंका एक विशाल संग्रह 'साधन-सुधा-सिन्धु' नामसे प्रकाशित हो चुका है। इस अनूठे ग्रन्थको साधकोंने बहुत पसन्द किया था।

आवश्यक सूचना

पाठकोंसे निवेदन है कि पुस्तक अथवा कल्याण मँगवानेके लिये जो धनराशि आप बैंक अथवा पोस्ट ऑफिसके माध्यमसे भेजते हैं, उसकी सूचना यथाशीघ्र ई-मेल अथवा पत्रके माध्यमसे गीताप्रेस, गोरखपुरको पत्राचारके पूरे पते मोबाइल नम्बरके साथ अवश्य भेज दिया करें ताकि आपद्वारा भेजी गयी धनराशिका शीघ्र समायोजन करके पुस्तकें भेजी जा सकें।

e-mail : kalyan@gitapress.org ; Mob.: 09235400242/244; WhatsApp 9648916010

e-mail : booksales@gitapress.org ; फोन : (0551) 2334721, 2331250, 2331251

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

प्र० ति० 20-03-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (सटीक) [मलयालम] ग्रन्थाकार (कोड 2172—2174)—तीन खण्डोंमें विभक्त यह ग्रन्थ मलयालम भाषामें पहली बार प्रकाशित किया गया है। श्रीमद्भागवतमहापुराणके बारहों स्कन्धोंकी मलयालम भाषामें बहुत ही सरस, सरल व्याख्या की गयी है। प्रत्येकका मूल्य ₹३५०

नीचे एक श्लोकका नमूना दिया गया है

വൈകുണ്ഠവാസിനോ യേ ച വൈഷ്ണവാ ഉദ്ധവാദയഃ
തത്കഥാശ്രവണാർത്ഥം തേ ഗൂഢരൂപേണ സംസ്ഥിതാഃ 5

വൈകുണ്ഠലോകത്തിൽ വസിക്കുന്ന ഉദ്ധവാദി വൈഷ്ണവഭക്തന്മാർ കഥകേൾക്കാനുള്ള താൽപര്യത്താൽ മറ്റാർക്കും കാണാനാകാതെ അദൃശ്യരൂപികളായി സഭയിൽ വന്നുവസിച്ചു. (5)

Śrī Bhīṣmapitāmaha (Code 2187) पुस्तकाकार —श्रीभीष्मपितामहका जीवन त्याग और शौर्यका अनुपम उदाहरण है। भगवान् श्रीकृष्णके प्रति इनकी भक्ति अनुकरणीय है। इस पुस्तकमें महाभारत एवं श्रीमद्भागवतके आधारपर श्रीभीष्मपितामहके सम्पूर्ण जीवन-चरित्रका अत्यन्त रसमय वर्णन किया गया है। मूल्य ₹२० (कोड 138) हिन्दी, (कोड 1723) कन्नड़, (कोड 691) तेलुगुमें भी उपलब्ध।
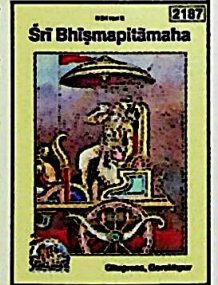
Navadha-Bhakti (Code 2185) पुस्तकाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर नवधा भक्तिकी व्याख्याके साथ भरत-चरित्रमें इस भक्तिका सुन्दर विवेचन किया गया है। मूल्य ₹१५ (कोड 292) हिन्दी, (कोड 1499) कन्नड़, (कोड 1275) मराठी, (कोड 921) तेलुगुमें भी उपलब्ध।
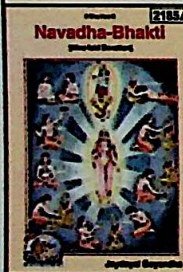
An Ideal Brother-Love (Code 2186) पुस्तकाकार—इसमें श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण और श्रीरामचरितमानसके आधारपर श्रीराम, श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्नके चरित्र एवं पारस्परिक प्रेमका एक मार्मिक विवेचन किया गया है। मूल्य ₹१५ (कोड 285) हिन्दी, (कोड 1757) तेलुगु, (कोड 1187) ओड़िआमें भी उपलब्ध।
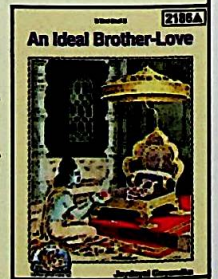
नवीन प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

2190 सरल गीता (बँगला)
2198 भक्त ओ भगवान् (बँगला)
2195 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (भाग-2) बँगला
2194 गीता प्रबोधिनी (पुस्तकाकार, गुजराती)

2192 श्रीमद्भागवतमहापुराणम्-वचनमु (खण्ड-1) तमिल
2193 श्रीमद्भागवतमहापुराणम्-वचनमु (खण्ड-2) तमिल
2196 श्रीविष्णुपुराणम्—तमिल